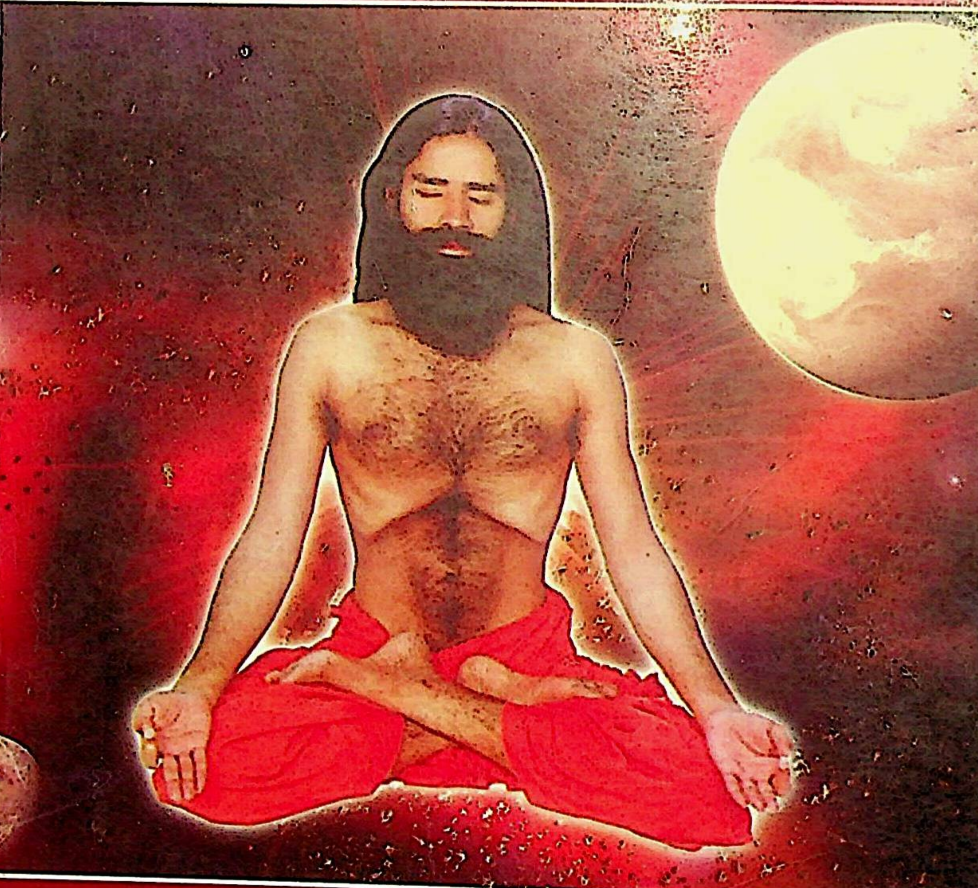
नवीन संशोधित संस्करण

।। ओ३म् ।।

प्राणायाम रहस्य

(वैज्ञानिक तथ्यों के साथ)



स्वामी रामदेव

1·1

॥ ओ३म् ॥

प्राणायाम रहस्य

(वैज्ञानिक तथ्यों के साथ)

प्राणायाम, ध्यान एवं कुण्डलिनी
जागरण के अनुभव-सिद्ध प्रयोगों का
सचित्र-प्रामाणिक विवेचन

स्वामी रामदेव

दिव्य प्रकाशन
दिव्य योग मंदिर (ट्रस्ट)
पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार

॥ ओ३म् ॥

प्रकाशक : दिव्य प्रकाशन
पतञ्जलि योगपीठ
महर्षि दयानन्द ग्राम,
दिल्ली-हरिद्वार राजमार्ग, बहादराबाद,
हरिद्वार-249408, उत्तराखण्ड

ई-मेल : divyayoga@rediffmail.com
वैबसाइट : www.divyayoga.com
दूरभाष : (01334) 244107, 240008, 246737
फैक्स : (01334) 244805

प्रथम संस्करण : 8,00,000 प्रतियाँ
संशोधित संस्करण : 50,000 प्रतियाँ, फरवरी 2009

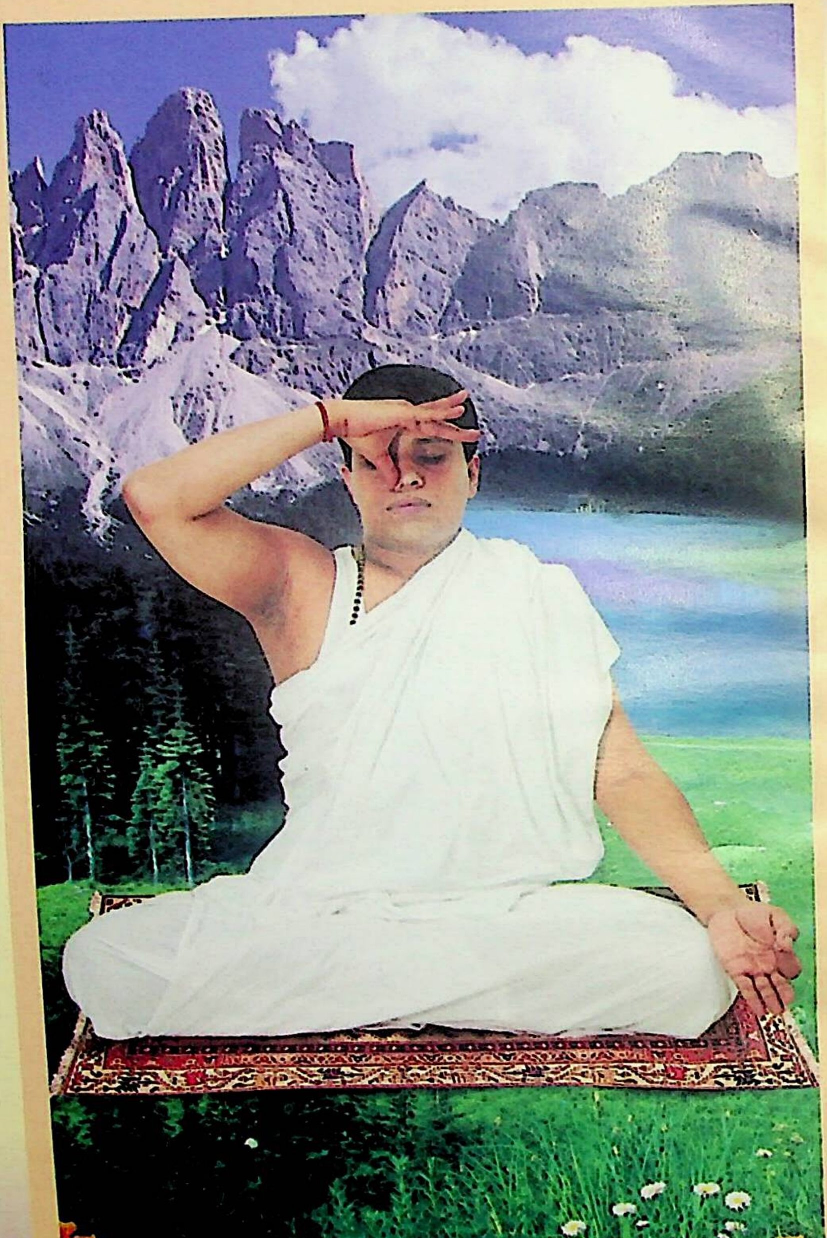
मुद्रक : साई सिक्युरिटी प्रिंटर्स प्राइवेट लिमिटेड
152, डी.एल.एफ. इंडस्ट्रियल एरिया
फरीदाबाद, (हरियाणा) 121003
ई-मेल : sspdel@saiprinters.com

वितरक : डायमण्ड पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
एक्स-30, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज-2,
नई दिल्ली-110020
फोन : 011-41611661, फैक्स : 011-41611866
ई-मेल : sales@diamondpublication.com
वेबसाइट : www.diamondpublication.com

Hindi
ISBN-81-7525-484-X 102 (02-09)

अनुक्रमणिका

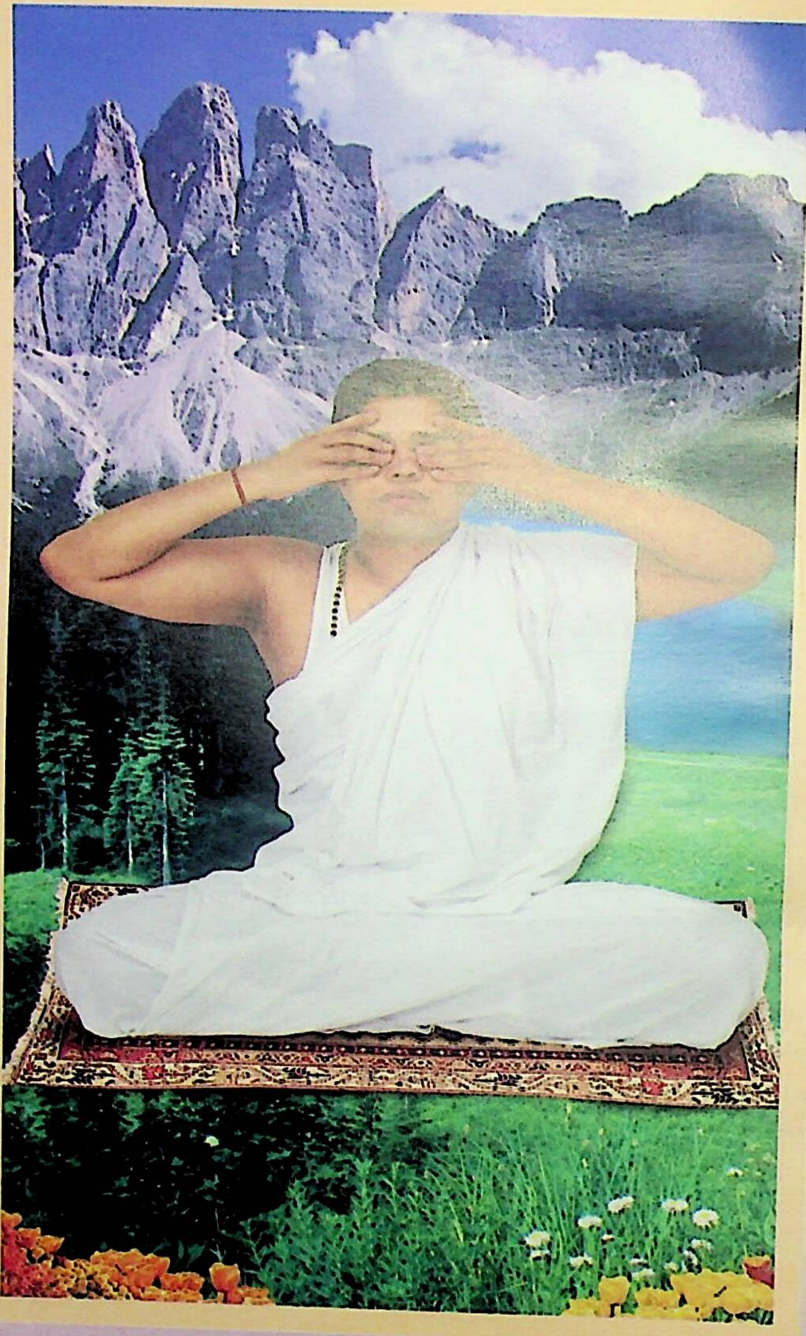
चित्र-2 : अनुलोम-विलोम प्राणायाम



चित्र-3 : अनुलोम-विलोम प्राणायाम



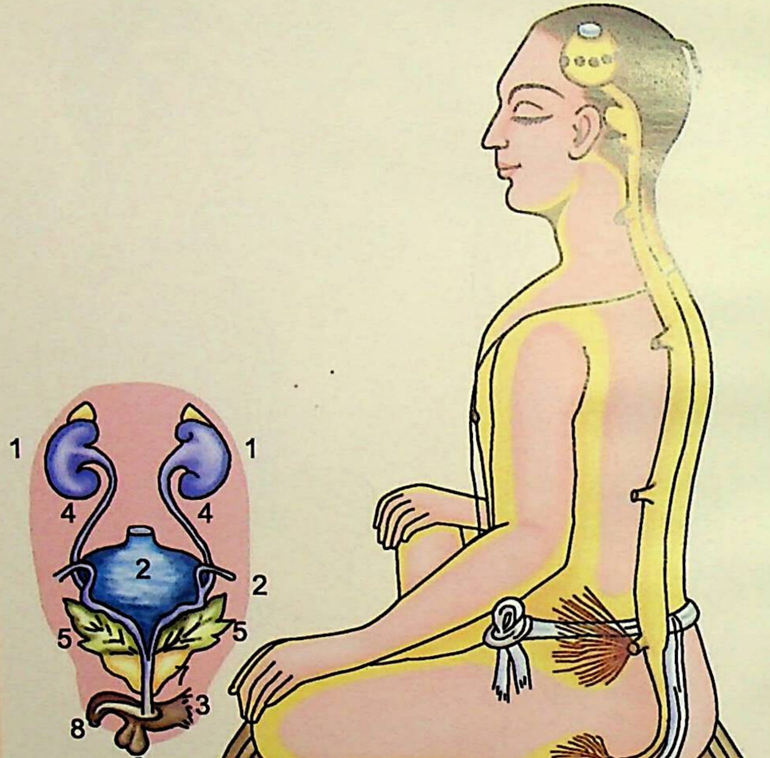
चित्र-4 : भ्रामरी प्राणायाम



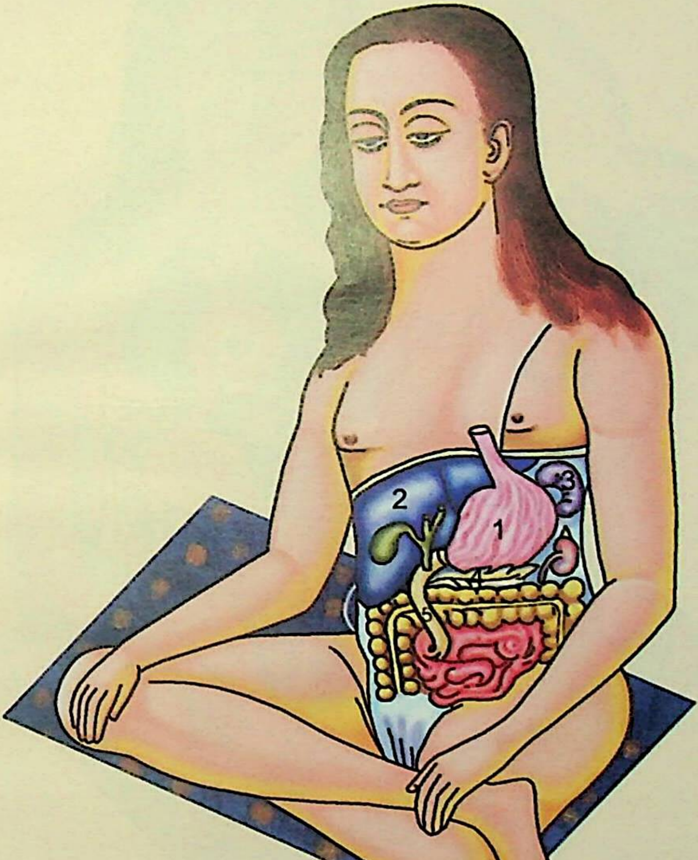
चित्र-5 : मूलाधार-चक्र



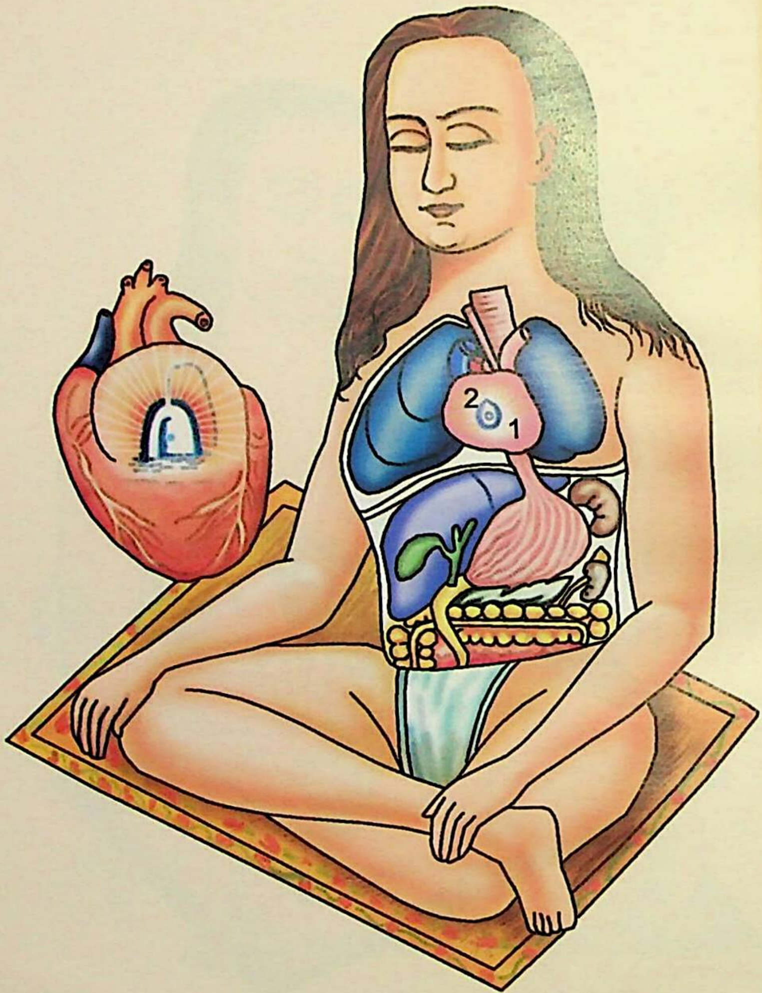
चित्र-6 : स्वाधिष्ठान-चक्र



चित्र-7 : मणिपूर-चक्र



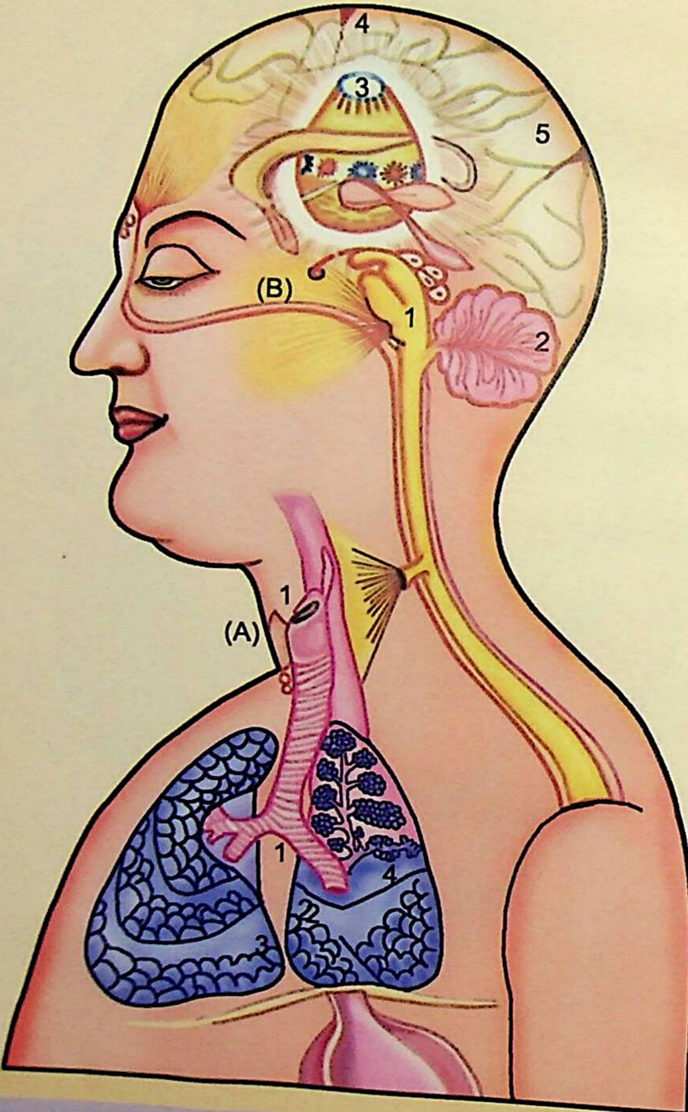
चित्र-8 : हृदय-चक्र या निम्न मनश्चक्र



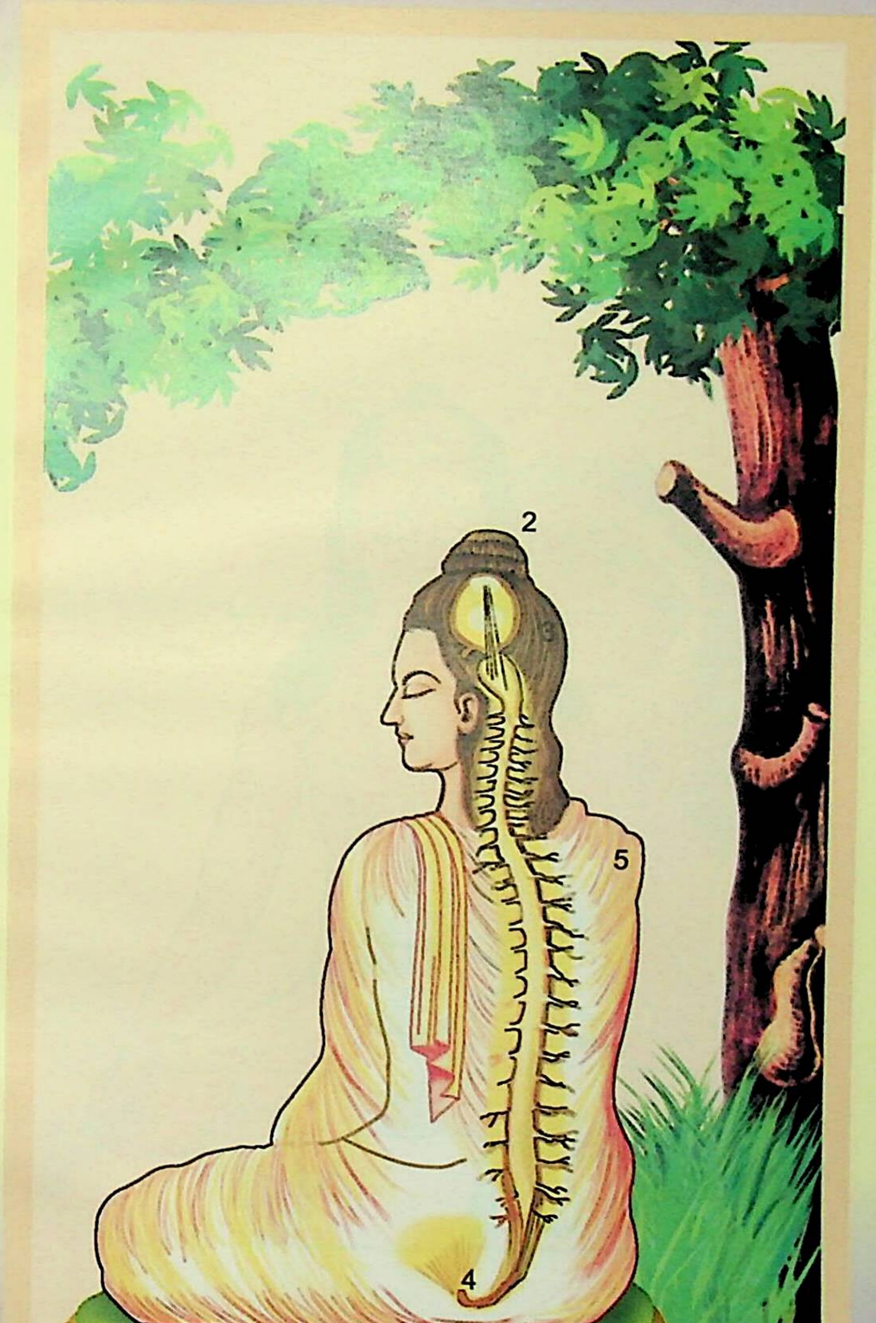
चित्र-9 : अनाहत-चक्र का बड़ा रूप



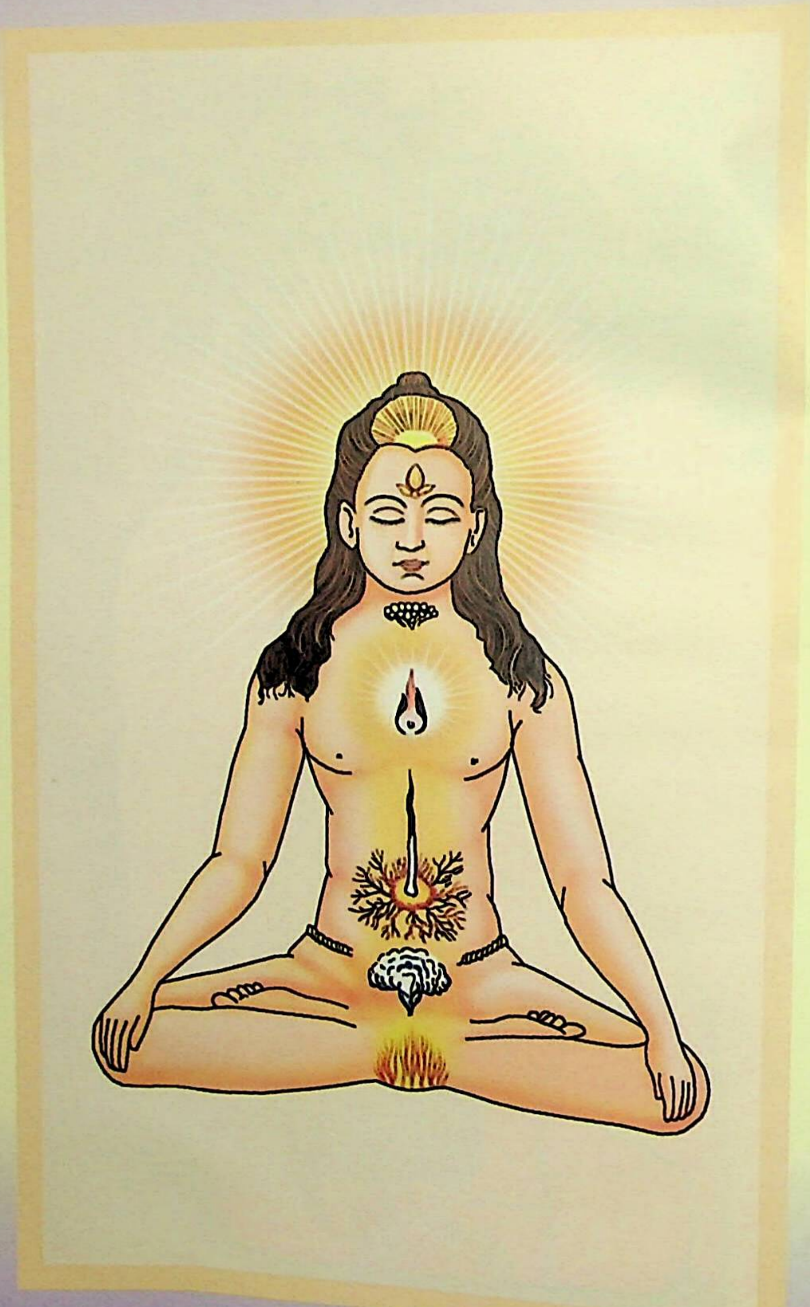
चित्र-10 : विशुद्धि-चक्र



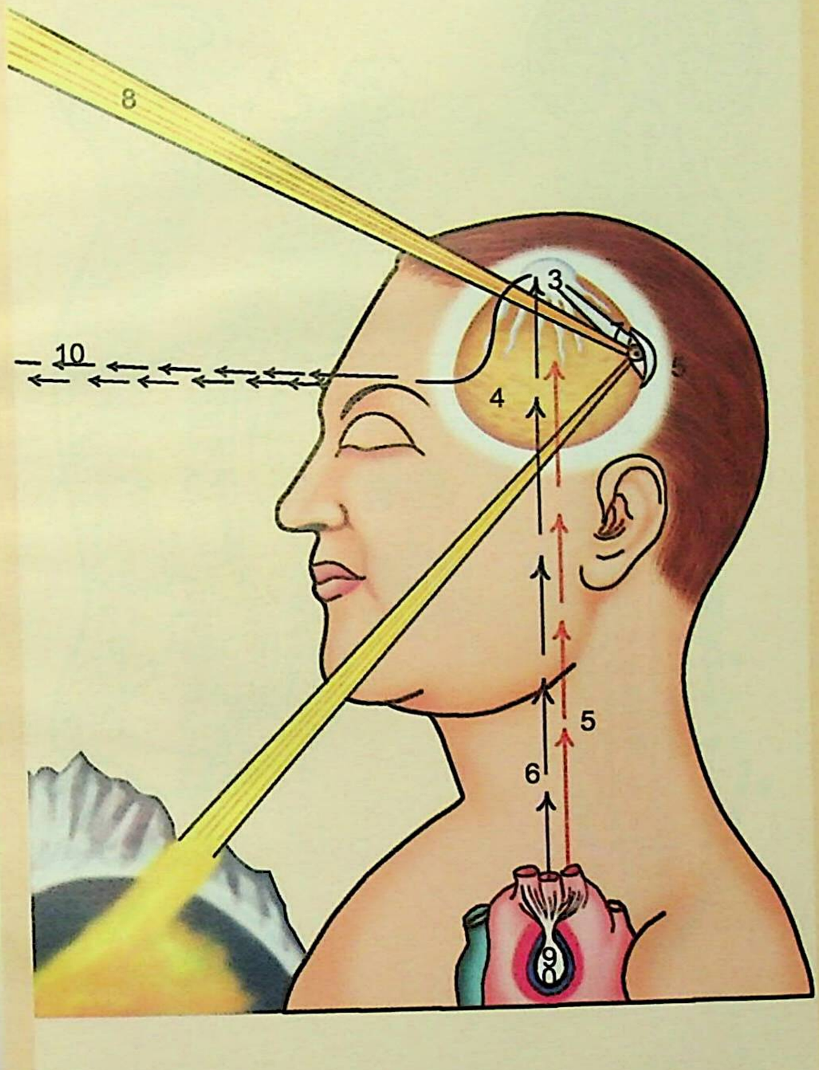
चित्र-11 : सौषुम्ण-ज्योति



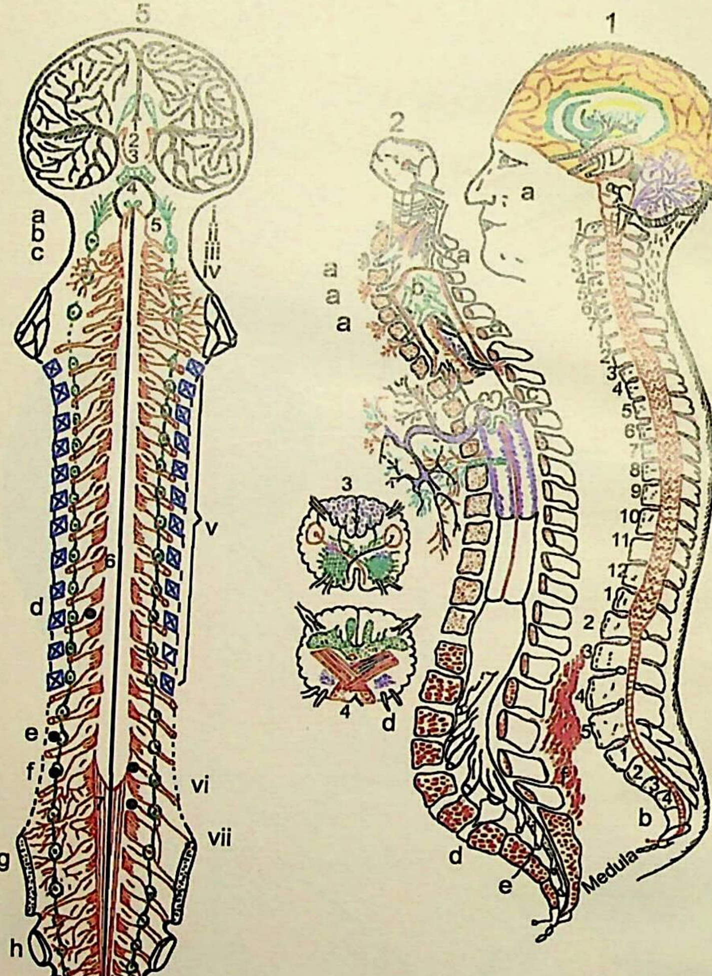
चित्र-12 : चक्र-दर्शन



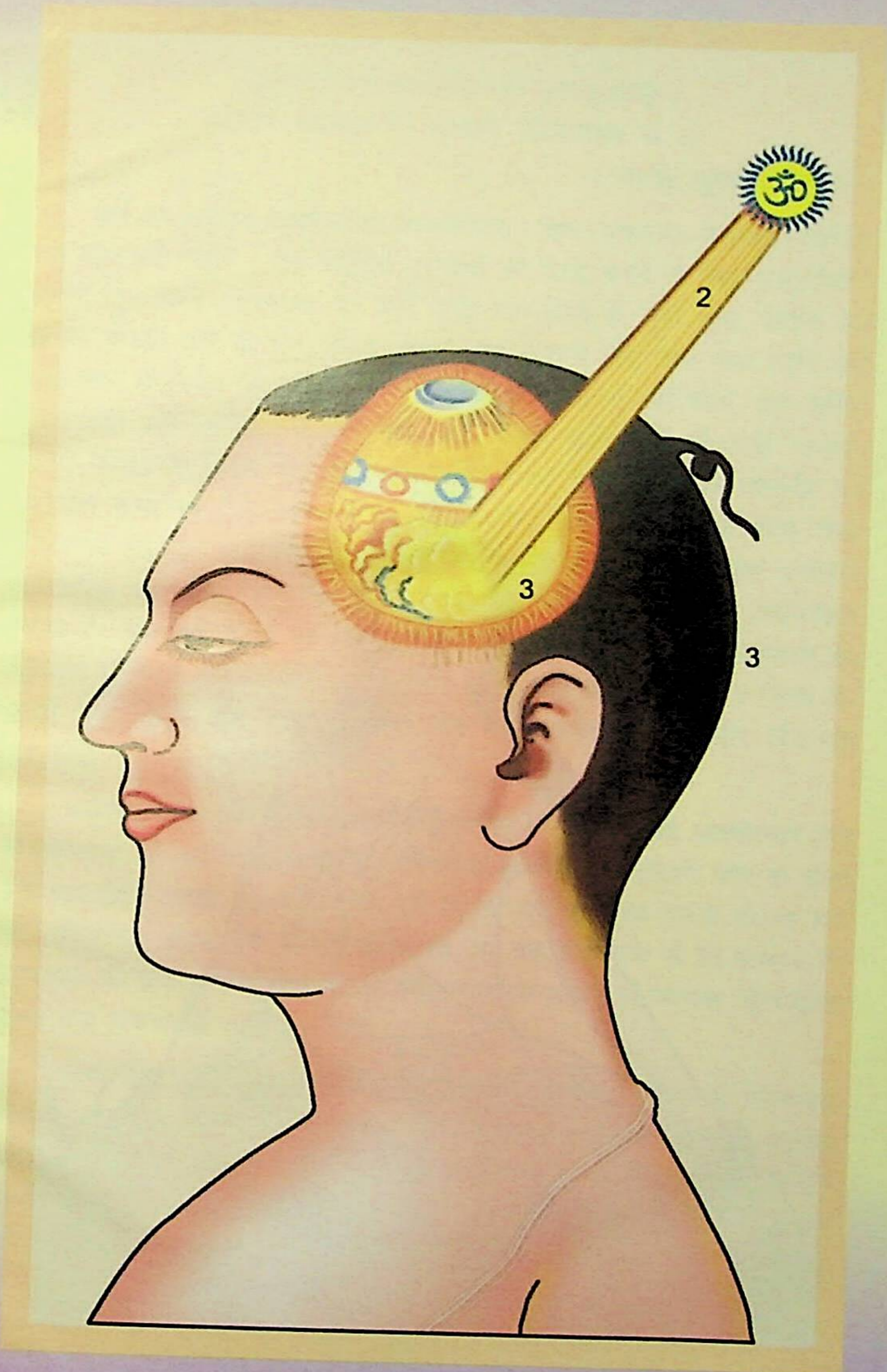
चित्र-13 : दिव्य दृष्टि का रूप



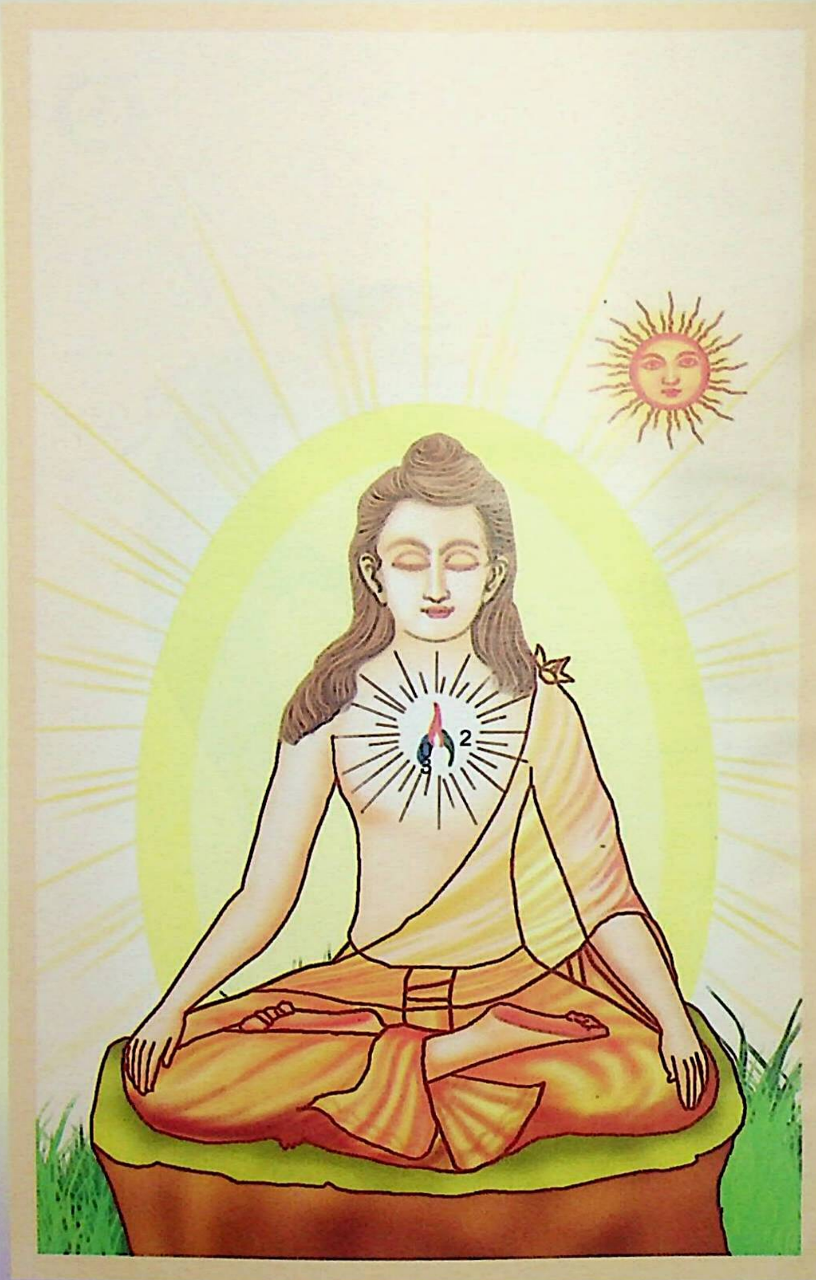
चित्र- 14 : पिंगल गण्डमाला और सुषुम्णा के अंग



चित्र-15 : गायत्री-ध्यान



चित्र-16 : दिव्य-आलोक-ध्यान
ॐ खं ब्रह्म का साक्षात्कार



प्रकाशकीय

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

(चरक सूत्रस्थान 1.15)

धर्म का अनुष्ठान, अर्थोपार्जन, दिव्यकामना (शिव-संकल्प) से सन्तति-उत्पत्ति तथा मोक्ष की सिद्धि - इन चतुर्विध पुरुषार्थों को सिद्ध करने के लिए सर्वतोभावेन स्वस्थ होना परम आवश्यक है। जहाँ शरीर रोग-ग्रस्त है, वहाँ सुख, शान्ति एवं आनन्द कहाँ? भले ही धन, वैभव, ऐश्वर्य, इष्ट-कुटुम्ब तथा नाम, यश आदि सब कुछ प्राप्त हो, फिर भी यदि शरीर में रक्त-संचार ठीक से नहीं होता, अंग-प्रत्यंग सुदृढ नहीं एवं स्नायुओं में बल नहीं, वह मानव-शरीर मुर्दा ही कहा जायेगा। मानव-जीवन में निरोग देह और स्वस्थ मन प्राप्त करने के लिए आयुर्वेद का प्रादुर्भाव हुआ था, जो आज भी अतीव उपयोगी है। शरीर के आन्तरिक मलों एवं दोषों को दूर करने तथा अन्तःकरण की शुद्धि करके समाधि द्वारा पूर्णानन्द की प्राप्ति हेतु ऋषि, मुनि तथा सिद्ध योगियों ने यौगिक प्रक्रिया का आविष्कार किया है। योग-प्रक्रियाओं के अन्तर्गत प्राणायाम का एक अतिविशिष्ट महत्त्व है। पतंजलि ऋषि ने मनुष्य-मात्र के कल्याण हेतु अष्टांग योग का विधान किया है। उनमें यम, नियम और आसन बहिरंग योग के अन्तर्गत हैं, जो शरीर और मन को शुद्ध करने में सहायक हैं।

धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग योग के अन्तर्गत हैं, जो आत्मोत्थान एवं कैवल्यानन्द की प्राप्ति के साधन हैं। प्राणायाम अन्तरंग एवं बहिरंग योग के बीच सेतु का कार्य करता है। यदि शरीर को स्वस्थ एवं रोगमुक्त करना हो या मन को पवित्र या आत्मा को निर्मल करना हो, तो वह प्राणायाम से ही सम्भव है। प्राणायाम के द्वारा वृत्ति-निरोध करके और आत्मस्थ होकर ही साधक जीवन्मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

दिव्य योग मन्दिर ट्रस्ट, कनखल एवं पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार के संस्थापक अध्यक्ष योगऋषि श्रद्धेय स्वामी रामदेवजी महाराज के सान्निध्य में लाखों साधक प्रतिवर्ष प्राणायाम, ध्यानादि योग की विशिष्ट प्रक्रियाओं का क्रियात्मक प्रशिक्षण प्राप्त करते हुए तन के रोगों एवं मन के दोषों से मुक्ति पा रहे हैं। श्रद्धेय आचार्य श्री प्रद्युम्न जी महाराज, आर्ष गुरुकुल, खानपुर, समादरणीय डा० विजयपाल

'प्रचेता:', जयपुर, सम्माननीय आचार्य सत्यजित् जी, अजमेर, डा० जवाहर पाल, नारनौल, साईं प्रिंटिंग प्रेस फरीदाबाद के यशस्वी चेयरमैन श्री वी० आर० राघवन के सम्पूर्ण सहयोग एवं उपयुक्त परामर्शों से पुस्तक का यह सुन्दरतम स्वरूप उभरकर आया है, इसके लिए समस्त विद्वद्गणों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

हम आशा करते हैं कि सुधी पाठकों को वैज्ञानिक पृष्ठभूमि के साथ पुस्तक का यह नवीनतम संस्करण बहुत ही रुचिकर प्रतीत होगा।

आचार्य बालकृष्ण

प्राण-सूक्त (अथर्व. 11/4/1-26)

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥१॥

(यस्य वशे) जिसके अधीन (इदम् सर्वम्) यह सब जगत् है, उस (प्राणाय नमः) प्राणके लिए मेरा नमस्कार है। (यः सर्वस्य ईश्वरः) जो प्राण सबका ईश्वर (भूतः) है और (यस्मिन् सर्वम् प्रतिष्ठितं) जिसमें सब कुछ रहा है।

नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते॥२॥

हे प्राण! (क्रन्दाय ते नमः) गर्जना करनेवाले तुझको नमस्कार है, (स्तनयित्नवे) मेघों में नाद करनेवाले तुझको नमस्कार है। हे प्राण! (विद्युते) चमकनेवाले तुझको नमस्कार है और हे प्राण! (वर्षते) वृष्टि करनेवाले तुझको नमस्कार है।

यत् प्राण स्तनयित्नुनाऽभिक्रन्दत्योषधीः।
प्र वीयन्ते गर्भान्दधतेऽथो बह्वीर्वि जायन्ते॥३॥

हे प्राण! (यत् स्तनयित्नुना ओषधीः अभिक्रन्दति) जब तू मेघों के द्वारा औषधियों के सम्मुख बड़ी गर्जना करता है, जब औषधियां (प्र वीयन्ते) तेजस्वी होती हैं, (गर्भान् दधते) गर्भ धारण करती हैं और (अथो बह्वीः वि जायन्ते) बहुत प्रकार से विस्तार को प्राप्त होती हैं।

यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः।
सर्वं तदा प्र मोदते यत्किं च भूम्यामधि॥४॥

हे प्राण! (ऋतौ आगते) वर्षाऋतु के आते ही जब तू (ओषधीः अभिक्रन्दति) औषधियों के उद्देश्य से गर्जना करने लगता है; (तदा यत् किं च भूम्याम् अधि तत् सर्वम् प्र मोदते) तब जो कुछ भी भूमि पर होता है, वह आनंदित होता है।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्।
पशवस्तत्प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति॥५॥

(यदा प्राणः) जब प्राण (वर्षेण महीम् पृथिवीम् अभ्यवर्षीत्) वृष्टिद्वारा इस बडी भूमि पर वर्षा करता है, (तत् पशवः प्र मोदन्ते) तब सब पशु हर्षित होते हैं (और समझते हैं कि) निश्चय से अब (नः वै महः भविष्यति) हम सबकी वृद्धि होगी।

अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
आयुर्वै नः प्रातीतरः सर्वा नः सुरभीरकः॥६॥

(अभिवृष्टाः ओषधयः) औषधियों पर वृष्टि होने के पश्चात् औषधियां (प्राणेन समवादिरन्) प्राण के साथ भाषण करती हैं कि, हे प्राण! (नः आयुः वै प्रातीतरः) तूने हमारी आयु बढ़ा दी है और हम सबको (सुरभीः) सुगंधियुक्त (अकः) किया है।

नमस्ते अस्त्वायते नमो अस्तु परायते।
नमस्ते प्राण तिष्ठत आसीनायोत ते नमः॥७॥

(आयते ते नमः अस्तु) आगमन करनेवाले प्राणके लिए नमस्कार है, (परायते नमः अस्तु) गमन करनेवाले प्राणके लिए नमस्कार है। हे प्राण! (तिष्ठते) स्थिर रहनेवाले और (आसीनाय ते नमः) बैठनेवाले प्राण के लिए नमस्कार है।

नमस्ते प्राण प्राणते नमो अस्त्वपानते।
पराचीनाय ते नमः प्रतीचीनाय ते नमः सर्वस्मै त इदं नमः॥८॥

हे प्राण! (प्राणते ते नमः) जीवन का कार्य करने वाले तुझे नमस्कार है, (अपानते ते नमः) अपानका कार्य करनेवाले तेरे लिये नमस्कार है। (पराचीनाय ते नमः) आगे बढनेवाले और (प्रतीचीनाय ते नमः) पीछे हटनेवाले प्राण के लिये नमस्कार है। (सर्वस्मै ते इदं नमः) सब कार्य करनेवाले तेरे लिये यह मेरा नमस्कार है।

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद्भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे॥९॥

हे प्राण! (या ते प्रिया तनूः) जो तेरा प्राणमय प्रिय शरीर है, (या ते प्रेयसी) और जो तेरे प्राणापानरूप प्रिय भाग हैं, तथा (अथो यत् तव भेषजं) जो तेरा औषध है, वह (जीवसे नः धेहि) दीर्घ जीवन के लिए हमें दो।

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्।
प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न॥१०॥

(पिता प्रियम् पुत्रम् इव) जिस प्रकार पिता प्रिय पुत्र के साथ रहता है, उस प्रकार (प्राणः प्रजाः अनु वस्ते) प्राण सब प्रजाओं के साथ रहता है। (यत् प्राणति) जो प्राण धारण करते हैं और (यत् च न) जो प्राण नहीं धारण करते, (प्राणः सर्वस्य ईश्वरः) प्राण ही उन सबका ईश्वर है।

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत्॥११॥

(प्राणः मृत्युः) प्राण ही मृत्यु है और (प्राणः तक्माः) प्राण ही जीवन की शक्ति है। इसलिए (प्राणम् देवाः उपासते) सब देव प्राणकी उपासना करते हैं। (प्राणः ह सत्यवादिनम्) क्योंकि सत्यवादी को प्राण ही (उत्तमे लोके आ दधत्) उत्तम लोक में पोषण करता है।

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्वे उपासते।
प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम्॥१२॥

प्राण (वि-राज्) विशेष तेजस्वी है और प्राण ही (देष्ट्री) सबका प्रेरक है, इसलिये (प्राणम् सर्वे उपासते) प्राण की ही सब उपासना करते हैं। (प्राणः ह सूर्यः चन्द्रमाः) प्राण ही सूर्य और चन्द्रमा है और (प्राणम् आहुः प्रजापतिम्) प्रजापति भी प्राण को ही कहते हैं।

प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान् प्राण उच्यते।
यवे ह प्राण आहितोऽपानो व्रीहिरुच्यते॥१३॥

(प्राणापानौ व्रीहियवौ) प्राण और अपान ही चावल और जौ हैं। (अनड्वान्) बैल ही (प्राणः उच्यते) मुख्य प्राण है। (यवे ह प्राणः आहितः) जौ में प्राण रखा है और (व्रीहिः अपानः उच्यते) चावल अपान को कहते हैं।

अपानति प्राणति पुरुषो गर्भे अन्तरा।
यदा त्वं प्राण जिन्वस्यथ स जायते पुनः॥१४॥

(पुरुषः गर्भे अन्तरा) जीव गर्भ के अन्दर (प्राणति अपानति) प्राण और अपान के व्यापार करता है। हे प्राण! जब तू (जिन्वसि) प्रेरणा करता है, तब वह (अथ सः पुनः जायते) जीव पुनः उत्पन्न होता है।

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते।
प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्॥१५॥

(प्राणम् मातरिश्वानम् आहुः) प्राण को मातरिश्वा कहते हैं और (वातः ह प्राणः उच्यते) वायु का नाम ही प्राण है। (भूतम् भव्यम् सर्वम् च ह प्राणे) भूत, भविष्य और सब कुछ वर्तमान काल में जो है, वह सब प्राण में (प्रतिष्ठितम्) ही रहता है।

आथर्वणीरांगिरसीर्दैवीर्मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्र जायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥१६॥

हे प्राण! (यदा) जब तक तू (जिन्वसि) प्रेरणा करता है, (आथर्वणीः आंगिरसीः दैवीः मनुष्यजाः औषधयः उत) तब तक ही आथर्वणी, आंगिरसी, दैवी और मनुष्यकृत औषधियाँ (प्र जायन्ते) फल देती हैं।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद्वर्षेण पृथिवीं महीम्।
ओषधयः प्र जायन्तेऽथो याः काश्च वीरुधः॥१७॥

(यदा प्राणः महीम् पृथिवीम् अभ्यवर्षीत्) जब प्राण इस बड़ी पृथ्वी पर वृष्टि करता है, तब सब (ओषधयः वीरुधः याः काः च प्र जायन्ते) औषधियाँ और वनस्पतियाँ, जो कुछ भी यहां हैं, वे सब बढ जाती है।

यस्ते प्राणेदं वेद यस्मिंश्चासि प्रतिष्ठितः।
सर्वे तस्मै बलिं हरानमुष्मिंल्लोक उत्तमे॥१८॥

हे प्राण! (यः ते इदम् वेद) जो मनुष्य तेरी इस शक्ति को जानता है और (यस्मिन् प्रतिष्ठितः असि) जिस मनुष्य में तू प्रतिष्ठित होता है, (तस्मै सर्वे अमुष्मिन् लोके बलिम् हरान्) उस उत्तम लोक में सब उसके लिये समर्पण करते हैं।

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान्यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः॥१९॥

हे प्राण! (यथा) जिस प्रकार ये (तुभ्यम् सर्वाः प्रजाः बलिहृतः) सब प्रजाजन तेरा सत्कार करते हैं कि, (यः) जो (सु-श्रवः) उत्तम यशस्वी है और (त्वा) तेरा सामर्थ्य (शृणवत्) सुनता है, (तस्मै बलिम् हरान्) उसके लिए भी अर्पण कर देते हैं।

अन्तर्गर्भश्चरति देवतास्वाभूतो भूतः स उ जायते पुनः।
स भूतो भव्यं भविष्यत्पिता पुत्रं प्र विवेशा शचीभिः॥२०॥

(देवतासु आभूतः) इंद्रियादिकों में जो प्राण है, वही (अन्तः गर्भः चरति) गर्भ के अन्दर चलता है। जो (भूतः) पहले हुआ था, (सः उ) वही (पुनः जायते) फिर उत्पन्न होता है। जो (भूतः) पहले हुआ था, (सः) वही (भव्यं भविष्यत्) अब होता है और आगे भी होगा। (पिता) पिता (शचीभिः) अपनी सब शक्तियों के साथ (पुत्रम् प्र विवेश) पुत्र में प्रविष्ट होता है।

एकं पादं नोत्खिदति सलिलाद्धंस उच्चरन्।
यदंग स तमुत्खिदेन्नैवाद्य न श्वः स्यान्न रात्री नाहः
स्यान्न व्युच्छेत्कदा चन॥२१॥

(सलिलात् हंसः उच्चरन्) जलसे ऊपर उठता हुआ हंस, (एकम् पादम् न उत्खिदति) एक पांव को उठाता नहीं। (अंग) हे प्रिय! (यत् स तम् उत्खिदेत्) यदि वह उस पांव को उठाएगा, (न एव अद्य स्यात्, न श्वः, न रात्रीः, न अहः स्यात्, न व्युच्छेत् कदा चन) तो आज, कल, रात्रि, दिन, प्रकाश और अंधेरा कुछ भी नहीं होगा।

अ॒ष्टाचक्रं॑ वर्तत॒ एक॑नेमि स॒हस्रा॑क्षरं॒ प्र पु॒रो नि प॒श्चा।
अ॒र्धेन॒ विश्वं॒ भुव॑नं ज॒जान॒ यद॑स्या॒र्धं क॑त॒मः स के॒तुः॥२२॥

(अष्टाचक्रम्) आठ चक्रों से युक्त, (सहस्राक्षरम्) सहस्राक्षर-चक्र में व्यक्त और (एकनेमि वर्तते) जिसका एक नेमि है, ऐसा यह प्राणचक्र (प्र पुरः नि पश्चा) आगे और पीछे चलता है। (अर्धेन विश्वम् भुवनम् जजान) आधे भाग से सब भुवनों को उत्पन्न करके (यत् अस्य अर्धम्) जो इसका आधा भाग शेष रहा है, (कतमः सः केतुः) वह भला किसका चिह्न है?

यो अ॒स्य वि॒श्वज॑न्मन॒ ईशे॒ विश्व॑स्य॒ चेष्ट॑तः।
अन्ये॑षु क्षि॒प्रध॑न्वने॒ तस्मै॑ प्राण॒ नमो॑ऽस्तु ते॥२३॥

हे प्राण! (अस्य विश्व-जन्मनः) सबको जन्म देनेवाले और (विश्वस्य चेष्टतः) हलचल करनेवाले इस सबका (यः ईशे) जो ईश है, (अन्येषु) उस सब अन्यों में (क्षिप्र-धन्वने नमः) शीघ्र गतिवाले तेरे लिये नमन है।

यो अ॒स्य स॒र्वज॑न्मन॒ ईशे॒ सर्व॑स्य॒ चेष्ट॑तः।
अत॑न्द्रो॒ ब्रह्म॑णा॒ धीरः॑ प्रा॒णो माऽनु॑ तिष्ठतु॥२४॥

(यः अस्य सर्वजन्मनः) जन्म धारण करनेवाले और (चेष्टतः सर्वस्य) हलचल करनेवाले सबका जो (ईशे) स्वामी है, वह धैर्यमय प्राण (अतन्द्रः) आलस्यरहित होकर (ब्रह्मणा धीरः) आत्मशक्ति से धैर्ययुक्त होता हुआ मेरा प्राण (मा) मेरे पास (अनुतिष्ठतु) सदा रहे।

ऊ॒र्ध्वः सु॒प्तेषु॑ जागार न॒नु ति॒र्यङ् नि प॑द्यते।
न सु॒प्तम॑स्य सु॒प्तेष्वनु॑ शुश्राव॒ कश्च॒न॥२५॥

(सुप्तेषु) सबके सो जाने पर भी यह प्राण (ऊर्ध्वः) खड़ा रहकर (जागार) जागता है, (ननु तिर्यङ् नि पद्यते) कभी तिरछा गिरता नहीं। (सुप्तेषु अस्य सुप्तम्) सबके सो जाने पर इसका सोना (कश्चन न अनुशुश्राव) किसी ने भी सुना नहीं है।

प्रा॒ण मा मत्प॒र्यावृ॑तो॒ न मद॒न्यो भ॑विष्यसि।
अ॒पां गर्भ॑मिव जी॒व से॒ प्राण॑ ब॒ध्नामि॑ त्वा॒ मयि॑॥२६॥

हे प्राण! (मत् मा पर्यावृतः) मुझसे पृथक् न होओ। (न मत् अन्यः, भविष्यसि) मुझसे दूर न होओ। (अपाम् गर्भ इव) पानी के समान हे प्राण! (जीव से मयि त्वा बध्नामि) जीवन के लिए मेरे अन्दर तुझको बांधता हूं।

प्राण का अर्थ एवं महत्त्व

पंच तत्त्वों में से एक प्रमुख तत्त्व वायु हमारे शरीर को जीवित रखता है और वात के रूप में शरीर के तीन दोषों में से एक दोष है, जो श्वास के रूप में हमारा प्राण है।

पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥
पवनस्तेषु बलवान् विभागकरणान्मतः।
रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः॥

(शार्ङ्गधरसंहिता : 5.25-26)

पित्त, कफ, देह की अन्य धातुएँ तथा मल- ये सब पंगु हैं, अर्थात् ये सभी शरीर में एक स्थान से दूसरे स्थान तक स्वयं नहीं जा सकते। इन्हें वायु ही जहाँ-तहाँ ले जाता है, जैसे आकाश में वायु बादलों को इधर-उधर ले जाता है। अतएव इन तीनों दोषों- वात, पित्त एवं कफ में वात (वायु) ही बलवान् है; क्योंकि वह सब धातु, मल आदि का विभाग करनेवाला और रजोगुण (क्रियाशीलता) से युक्त, सूक्ष्म अर्थात् समस्त शरीर के सूक्ष्म छिद्रों में प्रवेश करनेवाला, शीतल, रूखा, हल्का और चंचल है।

उपनिषदों में प्राण को ब्रह्म कहा है। प्राण शरीर के कण-कण में व्याप्त है, शरीर के कर्मेन्द्रियादि तो सो भी जाते है, विश्राम कर लेते हैं, किन्तु यह प्राण-शक्ति कभी भी न तो सोती है, न विश्राम ही करती है। रात-दिन अनवरत रूप में कार्य करती ही रहती है, चलती ही रहती है- 'चरैवेति चरैवेति' यही इसका मूलमन्त्र है। जब तक प्राण-शक्ति चलती रहती है, तभी तक प्राणियों की आयु रहती है। जब यह इस शरीर में काम करना बन्द कर देती है, तब आयु समाप्त हो जाती है। प्राण जब तक कार्य करते रहते हैं, तभी तक जीवन है, प्राणी तभी तक जीवित कहलाता हैं। प्राण-शक्ति के कार्य बन्द करने पर वह मृतक कहलाने लगता है। शरीर में प्राण ही तो सब कुछ हैं।

अखिल ब्रह्माण्ड में प्राण सर्वाधिक शक्तिशाली एवं उपयोगी जीवनीय तत्त्व है। प्राण के आश्रय से ही जीवन है।

प्राण के कारण ही पिण्ड (देह) तथा ब्रह्माण्ड की सत्ता है। प्राण की

अदृश्य शक्ति से ही सम्पूर्ण विश्व का संचालन हो रहा है। हमारा देह भी प्राण की ऊर्जा-शक्ति से क्रियाशील होता है। हमारा अन्नमय कोश (Physical Body) दृश्य शरीर भी प्राणमय कोश (Etheric Body) की अदृश्य शक्ति से संचालित होता है। आहार के बिना व्यक्ति लम्बे समय तक जीवित रह सकता है, परन्तु प्राण के बिना उसके जीवन का अस्तित्व शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। प्राणिक ऊर्जा (aura) ही हमारी जीवन-शक्ति तथा रोग-प्रतिरोधक शक्ति का आधार है। सभी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियों (glands), हृदय, फेफड़ों, मस्तिष्क एवं मेरुदण्ड-सहित सम्पूर्ण शरीर को प्राण ही स्वस्थ एवं ऊर्जावान् बनाता है। प्राण की ऊर्जा से ही आँखों में दर्शन-शक्ति, कानों में श्रवण-शक्ति, नासिका में घ्राण-शक्ति, वाणी में सरसता, मुख पर आभा, ओज एवं तेज, मस्तिष्क में ज्ञान-शक्ति एवं उदर में पाचन-शक्ति कार्यरत रहती है। इसलिए उपनिषदों में ऋषि कहते हैं :

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति॥

(प्रश्नोपनिषद् 2.13)

पृथिवी, द्यौ तथा अन्तरिक्ष इन तीन लोकों में जो कुछ भी है, वह सब प्राण के वश में हैं। हे प्राण! जैसे माता स्नेहभाव से पुत्रों की रक्षा करती है, ऐसे ही तू हमारी रक्षा कर। हमें श्री (भौतिक सम्पदा) तथा प्रज्ञा (मानसिक एवं आत्मिक ऐश्वर्य) प्रदान कर।

प्राण के प्रकार

प्राण साक्षात् ब्रह्म से अथवा प्रकृति-रूप माया से उत्पन्न है। प्राण गत्यात्मक है। इस प्राण की गत्यात्मकता सदागतिक वायु में पायी जाती है, एक अर्थ में प्राण वह सवार है जो वायु रूपी घोड़े पर बैठकर यात्रा करता है, अतः गौणी वृत्ति से वायु को ही प्राण कह देते है। शरीरगत स्थानभेद से एक ही वायु प्राण, अपान आदि नामों से व्यवहृत होता है। प्राण-शक्ति एक है। इसी प्राण को स्थान एवं कार्यों के भेद से विविध नामों से जाना जाता है। देह में मुख्य रूप से पाँच प्राण तथा पाँच उपप्राण हैं।

पंचप्राण की अवस्थिति तथा कार्य

1. **प्राण (Respiratory system) :** शरीर में कण्ठ से हृदय पर्यन्त जो वायु कार्य करता है, उसे 'प्राण' कहा जाता है।

   कार्य : यह प्राण नासिका-मार्ग, कण्ठ, स्वर-तन्त्र, वाक्-इन्द्रिय, अन्न-नलिका, श्वसन-तन्त्र, फेफड़ों एवं हृदय को क्रियाशीलता तथा शक्ति प्रदान करता है।

2. **अपान (Excretory system) :** नाभि से नीचे मूलाधार पर्यन्त रहने वाले प्राणवायु को 'अपान' कहते हैं।

   कार्य : मल, मूत्र, आर्तव, शुक्र, अधोवायु, गर्भ का निःसारण इसी वायु के द्वारा होता है।

3. **उदान :** कण्ठ के ऊपर से सिर पर्यन्त जो प्राण कार्यशील रहता है, उसे 'उदान' कहते हैं।

   कार्य : कण्ठ से ऊपर शरीर के समस्त अंगों नेत्र, नासिका एवं सम्पूर्ण मुखमण्डल को ऊर्जा और आभा प्रदान करता है। पिच्युटरी तथा पिनियल ग्रन्थि-सहित पूरे मस्तिष्क को यह 'उदान' प्राण क्रियाशीलता प्रदान करता है।

4. **समान (Digestive system) :** हृदय के नीचे से नाभि पर्यन्त शरीर में क्रियाशील प्राणवायु को 'समान' कहते हैं।

   कार्य : यकृत्, आँत, प्लीहा एवं अग्न्याशय सहित सम्पूर्ण पाचन-तन्त्र की आन्तरिक कार्य-प्रणाली को नियन्त्रित करता है।

5. **व्यान (Circulatory system) :** यह जीवनी प्राण-शक्ति पूरे शरीर में व्याप्त है।

कार्य : यह वायु शरीर की समस्त गतिविधियों को नियमित तथा नियन्त्रित करता है। सभी अंगों, मांस पेशियों, तन्तुओं, सन्धियों एवं नाड़ियों को क्रियाशीलता, ऊर्जा एवं शक्ति यही 'व्यान प्राण' प्रदान करता है।

इन पाँच प्राणों के अतिरिक्त शरीर में 'देवदत्त', 'नाग', 'कृकल', 'कूर्म' एवं 'धनंजय' नामक पाँच उपप्राण हैं, जो क्रमशः छींकना, पलक झपकना, जँभाई लेना, खुजलाना, हिचकी लेना आदि क्रियाओं को संचालित करते हैं।

प्राणों का कार्य प्राणमय कोश से सम्बन्धित है और प्राणायाम इन्ही प्राणों एवं प्राणमय कोश को शुद्ध, स्वस्थ और निरोग रखने का प्रमुख कार्य करता है, इसीलिए प्राणायाम का सर्वाधिक महत्त्व और उपयोग है। प्राणायाम का अभ्यास शुरू करने से पहले इसकी पृष्ठभूमि का परिज्ञान बहुत आवश्यक है। अतः, प्राणायाम-रूपी प्राण-साधना के प्रकरण के आरम्भ में प्राणों से सम्बन्धित विवरण दिया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए प्राणदर्शन-तालिका अगले पृष्ठ पर दी जा रही है।

प्राण-दर्शन-तालिका

मुख्य प्राण		गौण प्राण		चक्र	तत्त्व
नाम	स्थान	नाम	स्थान		
प्राण	हृदय के आसपास का भाग	नाग	नाभि से थोड़ा ऊपर	अनाहत	वायु
अपान	पेडू, गुदा	कूर्म	आँख की पलकों में	मूलाधार	पृथ्वी
उदान	हृदय, कण्ठ, तलवा, भृकुटि के मध्य एवं मस्तिष्क में	देवदत्त	श्वासनली के ऊपरी किनारे और गले में	विशुद्धि	आकाश
समान	नाभि तथा आसपास का विस्तार	कृकल	होजरी के ऊपर और श्वासनली के किनारे	मणिपूर	अग्नि (तेज)
व्यान	स्वाधिष्ठान–चक्र से सम्बद्ध होकर पूरे शरीर में व्याप्त	धनंजय	अस्थि, मांस, त्वचा, रक्त, ज्ञानतन्तु, बाल आदि में	स्वाधिष्ठान	जल

देह में स्थित पंचकोश

मनुष्य की आत्मा पाँच कोशों के साथ संयुक्त है, जिन्हें पंचशरीर भी कहते हैं। ये पाँच कोश निम्नांकित हैं :

1. **अन्नमय कोश :** यह पांचभौतिक स्थूल शरीर का पहला भाग है। अन्नमय कोश त्वचा से शुक्रपर्यन्त सप्तधातुमय है जो कि पृथ्वी-तत्त्व से सम्बन्धित है। नियमित आहार-विहार से अन्नमय कोश पुष्ट व स्वस्थ रहता है।

2. **प्राणमय कोश :** शरीर का दूसरा भाग प्राणमय कोश है। शरीर और मन के मध्य में प्राण माध्यम हैं। ज्ञान-कर्म के सम्पादन का समस्त कार्य प्राण से बना प्राणमय कोश ही करता है। श्वासोच्छ्वास के रूप में भीतर-बाहर जाने-आनेवाला प्राण स्थान तथा कार्य के भेद से दस प्रकार का माना जाता है। जैसे- प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान मुख्य प्राण हैं तथा धनंजय, नाग, कूर्म, कृकल और देवदत्त गौण प्राण या उपप्राण हैं। प्राण मात्र का मुख्य कार्य है-आहार का यथावत् परिपाक करना, शरीर में रसों को समभाव से विभक्त तथा वितरित करते हुए देहेन्द्रियों का तर्पण करना, रक्त के साथ मिलकर देह में सर्वत्र घूम-घूमकर मलों का निष्कासन करना, जो कि देह के विभिन्न भागों में रक्त में आ मिलते हैं। देह के द्वारा भोगों का उपभोग करना भी इसका कार्य है। प्राणायाम के नियमित अभ्यास से प्राणमय कोश की कार्यशक्ति बढ़ती है।

3. **मनोमय कोश :** सूक्ष्म शरीर के इस पहले क्रियाप्रधान भाग को मनोमय कोश कहते हैं। मनोमय कोश के अन्तर्गत मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त हैं, जिन्हें अन्तःकरणचतुष्टय कहते हैं। ज्ञान एवं ध्यान से मनोमय कोश की शुद्धि एवं पुष्टि होती है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, जिनका सम्बन्ध बाह्य जगत् के व्यवहार से अधिक रहता है।

4. **विज्ञानमय कोश :** सूक्ष्म शरीर का दूसरा भाग, जो ज्ञानप्रधान है, वह विज्ञानमय कोश कहलाता है। इसके मुख्यतत्त्व ज्ञानयुक्त बुद्धि एवं ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। जो मनुष्य ज्ञानपूर्वक विज्ञानमय कोश को ठीक से जान-समझकर उचित रूप से आचार-विचार करता है और असत्य, भ्रम, मोह, आसक्ति आदि से सर्वथा अलग रहकर निरन्तर ध्यान एवं समाधि का अभ्यास करता है, उसे

'ऋतम्भरा प्रज्ञा' उपलब्ध हो जाती है। प्रज्ञावान् योगी विवेक एवं वैराग्य से चित्तवृत्तियों को निरुद्ध करके आत्मबोध को उपलब्ध हो जाता है।

5. **आनन्दमय कोश :** इस कोश को हिरण्यमय कोश, हृदयगुहा, हृदयाकाश, कारणशरीर, लिंगशरीर आदि नामों से भी पुकारा जाता है। यह हमारे हृदय-प्रदेश में स्थित होता है। हमारे आन्तरिक जगत् से इसका सम्बन्ध अधिक रहता है, बाह्य जगत् से बहुत कम। मानव-जीवन, मानव के स्थूल शरीर का अस्तित्व और संसार के समस्त व्यवहार इसी पर आश्रित हैं। निर्बीज समाधि की प्राप्ति होने पर साधक आनन्दमय कोश में जीवन्मुक्त होकर सदा आनन्दमय स्थिति में रहता है।

प्राण-साधना

प्राण का मुख्य द्वार नासिका है। यह नासिका-छिद्रों के द्वारा आता-जाता है; श्वास-प्रश्वास, जीवन तथा प्राणायाम का आधार है। श्वास-प्रश्वास-रूपी रज्जु का आश्रय लेकर यह 'मन' देहगत आन्तरिक जगत् में प्रविष्ट होकर साधक को वहाँ की दिव्यता का अनुभव करा दे, इस उद्देश्य को लेकर ही प्राणायाम-विधि का आविष्कार ऋषि-मुनियों ने किया था।

योगदर्शन के अनुसार- **तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।** (योगदर्शन - 2.49) अर्थात् आसन की सिद्धि होने पर श्वास-प्रश्वासों की गति को लयबद्ध करना ही प्राणायाम है। जो वायु श्वास अन्दर खींचने पर बाहर से भीतर पहुँचती है, उसे श्वास (inhalation) और श्वास बाहर छोड़ने पर जो वायु भीतर से बाहर निकलती है, उसे प्रश्वास (exhalation) कहते हैं। प्राणायाम करने के लिए श्वास अन्दर लेना 'पूरक', श्वास को रोके रखने को 'कुम्भक' तथा श्वास को बाहर छोड़ना 'रेचक' कहलाता है। श्वास को बाहर रोककर रखने को 'बाह्यकुम्भक' कहते हैं तथा श्वास को अन्दर भरकर अन्दर ही रोककर रखना 'अन्तःकुम्भक' कहलाता है। इस प्रकार प्राणायाम करने के लिए पूरक, कुम्भक व रेचक क्रियाएँ की जाती हैं। अच्छी तरह प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर, जब नियमित रूप से विधिपूर्वक प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है, तब **ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्** (योगदर्शन - 2.52) के अनुसार ज्ञानरूपी प्रकाश को ढकनेवाला अज्ञान का आवरण हट जाता है और **धारणासु च योग्यता मनसः** (योगदर्शन - 2.53) के अनुसार प्राणायाम सिद्ध हो जाने पर मन में योग के छठे अंग धारणा की योग्यता आ जाती है। संक्षेप में प्राणायाम के सतत अभ्यास से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि प्राणायाम की निरन्तरता से प्रत्याहार, प्रत्याहार में निरन्तरता से धारणा, धारणा की निरन्तरता से ध्यान व ध्यान की निरन्तरता से समाधि की अवस्था की सहज उपलब्धि होती है। अतः मैं अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि प्राणायाम समाधि का बीजमंत्र है या प्राणायाम का परिणाम है समाधि। जब श्वास शरीर में आता है, तब मात्र वायु या ऑक्सीजन ही नहीं आती है, अपितु एक अखण्ड दिव्य शक्ति भी अन्दर जाती है, जो शरीर में जीवनी-शक्ति को बनाये रखती है। प्राणायाम करना केवल श्वास का लेना और छोड़ना मात्र नहीं होता, बल्कि वायु के साथ ही प्राण-शक्ति या जीवनी शक्ति (vital force) को भी ग्रहण करना होता है। यह जीवनी-शक्ति सर्वत्र व्याप्त, सदा विद्यमान रहती है; जिसे हम ईश्वर, गॉड (God) या खुदा आदि जो भी नाम दें, वह परम शक्ति तो एक ही है और उससे ठीक से जुड़ना और जुड़े रहने का अभ्यास करना ही प्राणायाम है।

वैदिक साहित्य में प्राणविद्या

वैदेह जनक के बहुदक्षिण यज्ञ के समय पञ्चाल देश के श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों की सभा में विदग्ध शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछा :

कति देवा याज्ञवल्क्येति? **(बृहदारण्यकोपनिषद् 3.9.1)**

याज्ञवल्क्य ने क्रमशः तीन हजार, तेंतीस, छह, दो और एक देवों का निरूपण करते हुए अन्त में सब देवों में श्रेष्ठ एक देव के स्वरूप का व्याख्यान किया।

कतम एको देव इति? प्राण इति
स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते। **(बृहदारण्यकोपनिषद् 3.9.9)**

अर्थात् यह एक देव कौन सा है? वह प्राण है। उसे ही ब्रह्म कहा जाता है। क्षर और अक्षर, जड व चेतन जगत् सब प्राण ब्रह्म का ही विस्तार है। प्राण ही प्रजापति रूप से सबके केन्द्रों में, हृदय या गर्भ में बैठा हुआ नाना रूप से प्रकट हो रहा है। योगी या आत्मज्ञानी पुरुष ही नाभिस्थित उस प्राणरूप योनि को देखते हैं।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥
(यजुर्वेद 31.19)

शतपथ ब्राह्मण में प्राण को अमृत व प्रजापति कहा है-

प्राणो अमृतं तद् हि अग्ने रूपम् **(शतपथ 10.2.6.18)**
प्राणो हि प्रजापतिः **(शतपथ 4.5.5.13)**
प्राण उ वै प्रजापतिः **(शतपथ 8.4.1.4)**
प्राणः प्रजापतिः **(शतपथ 6.3.1.9)**

आयुर्वेद का सिद्धान्त है कि सब रोग मन्दाग्नि से पैदा होते हैं-

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि च।
(अष्टांगहृदय निदानस्थान 12)
(माधवनिदान उदररोग 1)

उदरस्थ मन्दाग्नि से ही सप्तधातु, तीन दोषों व शरीर के मूलतत्त्व पंचभूतों में विकार रूप रोग उत्पन्न हो जाते हैं। आयुर्वेद में 13 अग्नियाँ मानी गई हैं- एक जठराग्नि, पांच भूताग्नि एवं सप्त धात्वग्नि। इन तेरह अग्नियों की चिकित्सा को ही आयुर्वेद में कायचिकित्सा कहते हैं।

कायस्यान्तरग्नेश्चिकित्सा कायचिकित्सा।।[1]

(चरकसूत्रस्थान 30.28 चक्रपाणि)

कायचिकित्सा आयुर्वेद शास्त्र की प्रधान चिकित्सा प्रणाली है। आयुर्वेद में अग्नि चिकित्सा के लिए विविध विधान हैं। योगशास्त्र में प्राण को ही अग्नि कहा है। अतः प्राणचिकित्सा अर्थात् प्राणायाम से ही यदि अग्नि की चिकित्सा की जाये तो यह सबसे सरल, सस्ती, प्रामाणिक व वैज्ञानिक प्रक्रिया होगी।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो, व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद् गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः, यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती, समं नयतीति स समानः, मनो ह वाव यजमानः, इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति।

(प्र. उ. 4.3)

अर्थात्- इस शरीर-रूपी ब्रह्माग्नि में प्राणाग्नियाँ सुलगती रहती हैं (उस समय भी जब अन्य इन्द्रियादि देव सो जाते हैं)। गार्हपत्य अग्नि अपान, अन्वाहार्यपचन या दक्षिणाग्नि व्यान और आहवनीय प्राण हैं। श्वास-प्रश्वास आहुतियों को समावस्था में रखने वाला समान है। मन यजमान है। इष्टफल उदान है। वह इस मन को नित्य ब्रह्म के समीप ले जाता है।

प्राणो वाग्निः **(शतपथ 2.2.2.15)**
तदग्निर्वै प्राणः **(जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण 4.22.11)**
प्राणो अग्निः **(शतपथ 6.3.1.21)**

जीवन एक यज्ञ है -

पुरुषो वै यज्ञः।
पुरुषो वाव यज्ञः । **(शतपथ 1.3.2.1)**

ते वा एते प्राणा एव यद् आहवनीयगार्हपत्यान्वाहार्यपचनाख्या अग्नयः। **(शतपथ 2.2.2.18)**

इस जीवन रूपी यज्ञ की ये प्राण ही गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय नामक तीन अग्नियाँ हैं। इन्हीं से यह जीवनयज्ञ चल रहा है। जीवनयज्ञ में प्राण रूपी अग्नियाँ सदा जागृत रहती हैं और इससे देह व इन्द्रियां आयु पर्यन्त अक्षीण तेज वाले रहते हैं, उनमें मृत्यु का सम्पर्क नहीं हो पाता।

---

1. **जाठरः प्राणिनामग्निः काय इत्यभिधीयते-भोज।**
कायति शब्दं करोतीति कायो जाठराग्निः।।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति **(प्रश्नोपनिषद् 4.3)**

प्राण ही हरि है- **प्राणो वै हरिः** **(कौषीतकि 17.9)**

जैमिनीय ब्राह्मण में प्राण को ही हंस कहा गया है। आत्मा इस प्राणरूपी हंस पर आरूढ होकर जन्म-मरण के बन्धन से तर जाता है- **प्राणो वै सुपर्णः** अर्थात् प्राण ही सुपर्ण (हंस) है।

प्राण एवं अपान ही देवताओं के दिव्य वैद्य हैं जो समस्त ब्रह्माण्ड की चिकित्सा करते हैं, जिनकी विद्यमानता में मृत्यु का आक्रमण नहीं होता अर्थात् ये प्राण-अपानरूपी देववैद्य जहाँ होंगे, जो व्यक्ति प्राणायाम करेगा वह रोगों से नहीं मरेगा। वह पूर्णायु को प्राप्त कर मृत्युंजयी बन जायेगा और इच्छामृत्यु को प्राप्त करेगा। ब्राह्मण ग्रन्थों और पुराणों में एक बहुत ही रोचक व सुन्दर कथा आती है, जिसका सार यह है कि वृद्ध एवं जीर्ण-शीर्ण शरीर वाले च्यवन ऋषि को देववैद्यों अश्विनीकुमारों ने पुनः युवा बना दिया। ये प्राण-अपान ही देवताओं के दिव्य देववैद्य हैं। अथर्ववेद में भी यही कहा गया है।

प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद् देवानामग्ने भिषजा शचीभिः।
संक्रामतं मा जहीतं शरीरं प्राणापानौ ते सयुजाविह स्ताम्।
(अथर्ववेद 7.53.1,2)

हे अश्विनीकुमारो! मृत्यु को हमसे दूर करो। तुम देवों के भिषक् (वैद्य) हो। जिससे हम मनुष्य शतायु होकर जीवें। अथर्ववेद के प्राण सूक्त (11/2) में जहाँ प्राण शक्ति की अनन्त महिमा का वर्णन है, वहीं ऋग्वेद में प्राण को औषधि, महौषधि एवं दैवी शक्तियों का संवाहक कहा है।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे॥ **(ऋग्वेद 10.137.3)**

हे प्राण! तुम औषध बनकर हमें प्राप्त हो तथा जो 'रप' अर्थात् अशुद्धि, विकार या रोग है, हे वात! अर्थात् प्राण 'वि वाहि' उनको दूर कर दो। हे प्राण! तुम विश्वभेषज अर्थात् सम्पूर्ण औषध हो, साथ ही तुम देवताओं के दूत हो, अर्थात् दिव्य भावों को प्रदान करने वाले हो। प्राणायाम के द्वारा स्वास्थ्य संपादन की विधि दैवी चिकित्सा है। शरीरस्थ च्यवन क्रिया (catabolism) को अश्विनीकुमार अर्थात् प्राण-अपान रूप (anabolism) दिव्यशक्ति के द्वारा संतुलित करके हम पूर्णारोग्य एवं पूर्णायु प्राप्त कर सकते हैं। शरीरस्थ रसों को फिर से यविष्ठ बनाने की विधि प्राणायाम है। प्राचीन ऋषियों ने प्राणविद्या के रहस्य को जानकर जिस योगविद्या का आविष्कार किया, अनन्त काल तक यही योगविद्या या प्राणविद्या आरोग्य,

अमृतत्त्व और दीर्घ आयुष्य पाने के लिये सर्वोत्कृष्ट मानी जाती रहेगी। प्राण की प्रतिष्ठा ही अमृतत्व है, प्राण की उत्क्रान्ति ही मृत्यु है। प्राणायाम ही कुण्डलिनी जागरण, ऊर्ध्वरेता होने, प्राणोत्थान या ब्रह्मचर्य की रक्षा का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

रेतो वै प्राण:, प्राणो रेत:।

प्राण ही रेत अर्थात् शुक्र या सोम रस है। इस रेत का शरीर में सम्यक् पाचन ही ब्रह्मचर्य है। यही परम तप है। इस ब्रह्मौदन के परिपक्व होने से अमृत तत्त्व उत्पन्न होता है। यही सोमपान है।

यस्मात्पक्वादमृतं संबभूव यो गायत्र्या अधि पतिर्बभूव।
यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपास्तेनौदनेनातितराणि मृत्युम्॥

(अथर्ववेद 4.35.6)

अर्थात् जिस ब्रह्मौदन के शरीर में पक्व होने से अमृत उत्पन्न होता है, जो गायत्री (ब्रह्मचर्यकाल) का अधिपति है और जिसमें विश्वरूप वेद प्रतिष्ठित हैं, उस सिद्ध ओदन (रेत) से मैं मृत्यु के पार जाता हूँ।

वैदिक भाषा में ब्रह्माण्ड या मस्तिष्क 'स्वर्ग' है। इन्द्र की इन्द्रिय-शक्ति का निवास ब्रह्माण्ड (cerebrum) में ही रहता है। यहीं सब इन्द्रियों के केन्द्र हैं, जहाँ से इन्द्र प्राणों का संचालन करता है। बाह्य संस्पर्शों के आदान-प्रदान की शक्तियाँ (sensory and motor function) प्राण है। उनका नियन्ता इन्द्र ब्रह्माण्ड या स्वर्ग का अधिपति है। वह इन्द्र सोम पीकर अमरत्व लाभ करता है। यह सोम क्या वस्तु है?

कोई सोम को एक बाह्य वनस्पति लता या वल्ली समझते हैं और उससे अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करते हैं। किसी एक वल्ली को सोम मानकर बैठ जाना, सोम के विराट् अर्थ को पंगु कर देना है। सोम भौतिक रूप में एक लता भी हो; पर कहना यह है कि विशुद्ध वैदिक परिभाषा में सोम का अर्थ बहुत व्यापक है। समस्त लताओं, वनस्पतियों व अन्न का नाम सोम है। शतपथ के अनुसार अन्न सोम है-

अन्नं वै सोम: । **(शत. 2.9.18)**

इस अन्न के पाचन से जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह भी सोम है। शतपथ, कौषीतकि, ताण्ड्य आदि ब्राह्मणों में लिखा है कि प्राण का नाम सोम है। अन्न खाने के अनन्तर, स्थूल भाग के परिवर्तन से जो सूक्ष्म विद्युत् स्वरूप शक्ति देह में उत्पन्न होती है, उसकी संज्ञा प्राण है, वही सोम है। और भी शक्ति का सब से विशुद्ध और सब धातुओं के द्वारा अभिषुत उत्कृष्ट सार जो वीर्य या रेत है वह भी सोम है। इसलिये सब ब्राह्मणकारों ने लिखा है-

रेतो वै सोमः । (शत. 1.9.2.6)

ब्रह्माण्ड या मस्तिष्क को शक्ति देने के लिये इस सोम या रेत से बढ़ कर कोई और दिव्य पदार्थ नहीं है। रेत जल का परिणाम रूप है। पृथिवीस्थ जल सूर्य ताप से द्युलोक-गामी बनता है। इसी प्रकार तप के द्वारा स्वाधिष्ठान-चक्र के क्षेत्र में स्थित जल-शक्ति ब्रह्माण्ड रूपी मस्तिष्क या स्वर्ग में पहुँचती है। वहाँ दिविस्थ होकर ही सोम या रेत समस्त शरीर में प्राणों और इन्द्रियों का प्रीणन (तर्पण) करता है। मनश्चक्र-रूपी इन्द्र को यही सोम अतिशय प्रिय है। इसी का नाम अमृत है। वीर्य-रूपी सोम की रक्षा अमरत्व देती है। उसका क्षय ही मृत्यु है। सोम की कलाओं की वृद्धि से अमृत की वृद्धि होती हैं। उन कलाओं के क्षय से मनश्चक्र क्षय की ओर उन्मुख होता है। चन्द्रमा के घटने-बढ़ने की पौराणिक कथा में इसी अध्यात्मतत्त्व का संकेत है। देवता अपने सोम का संवर्धन करते हैं। असुर उसका पान कर जाते हैं। आयु के जिस भाग में सोम की वृद्धि हो, वह शुक्ल पक्ष है। जिस भाग में क्षयोन्मुख हो, वह कृष्णपक्ष है। इन्हीं दो भागों से मनुष्य-आयु क्या, समस्त प्रकृति बनी है। कभी वृद्धि होती है, कभी ह्रास होता है। समस्त जीव, पशु, वनस्पति, अमृत और मृत्यु के इस चक्र में पड़े हुए हैं। वनस्पतियों की सोम-बुद्धि और सोम-क्षय प्राकृतिक विधान के अनुकूल होते हैं, परन्तु मनुष्य अनेक प्रकार से प्रकृति का विरोध करता है। यह सचेतन और संज्ञान प्राणी है। ऋषियों ने सोम को जीवन का मूल प्राण जान कर उसी की रक्षा और अभिवृद्धि के लिये अनेक प्रकार से उपदेश दिया है। सोमसंवर्धन ही ब्रह्मचर्य की सिद्धि है। वस्तुतः आत्मा को जानने के लिये ब्रह्मचर्य अनिवार्य साधन है। 'आत्मा की सत्ता को मानकर भी जो व्यभिचार करता है, वह मानो सूर्य के सामने अन्धकार के अस्तित्व को स्वीकार करता है।' (महात्मा गांधी) तपोवनों और आश्रमों में रहने वाले ऋषियों ने आत्म-ज्ञान के लिये कहा है-

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् । (मु. उपनि. 3.5)

अर्थात्- यह आत्मा, सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और नित्य ब्रह्मचर्य से ही मिल सकता है।

जिन महर्षियों ने पूर्व कल्प में ध्यान-योग के द्वारा यह संकल्प किया कि समस्त प्राणियों का भद्र या कल्याण हो, उन्होंने भी पहले तप और दीक्षा का ही आश्रय लिया। तभी राष्ट्र, बल, ओज आदि की उत्पत्ति हुई।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसंनमन्तु॥

(अथर्व 19.41.1)

उन आश्रमस्थ ऋषियों के अतिरिक्त शरीर में भी सप्त ऋषि हैं। ये सप्तर्षि सात शीर्षस्थ प्राण हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है-

प्राणा वा ऋषयः । **(बृ. उ. 2.2.3)**

सप्त प्राण ही सप्तऋषि हैं और आगे चलकर इन सातों के नाम भी स्पष्ट कर दिए है। गौतम भारद्वाज- दो कान। विश्वामित्र, जमदग्नि- दो आंखें। वसिष्ठ, कश्यप- दो नासिका रन्ध्र। अत्रि- वाक्। ये सातों ऋषि स्वः अर्थात् स्वर्ग या मस्तिष्क (cerebrum or higher brain) के वेत्ता हैं। ये पहले तप करते हैं। उत्पन्न होते ही इन्द्रियों में दीक्षा और तप का भाव रहता है। उनकी वृत्तियां ऋषियों के समान पवित्र और संयत रहती हैं। तभी बल ओज आता है और राष्ट्र की उत्पत्ति होती है, वैसा शरीर राष्ट्र, जिसमें सचमुच प्रजाएँ बिना विद्रोह के, आत्मा को सम्राट् मानकर बसती है। बड़े होने पर इन्द्रियाँ उच्छृङ्खल होने लगती हैं। तभी राष्ट्र में विद्रोह पैदा होता है। उसमें समन्वय स्थापित करने के लिये सप्तर्षियों ने स्वेच्छा से दीक्षित होकर तप का आश्रय लिया। तप से ही राष्ट्रों का जन्म होता है, भोग से राष्ट्र अस्त हो जाते हैं। चाहे शरीर-रूपी राष्ट्र हो, चाहे विराट् रूप में देशव्यापी राष्ट्र हो। तप प्रत्येक व्यक्ति में आना चाहिए। इसी का संकल्प ऊपर के मन्त्र में है।

इस प्रकार विधि-पूर्वक किये गये तप और ब्रह्मचर्य से, आयु के प्रथम आश्रम में, वीर्य का संरक्षण करना इस मानवीय जीवन की एक बहुत बड़ी विजय और सिद्धि है। वही एक मूल-मन्त्र है, जिसके सम्यक् सिद्ध करने से जीवन सफल हो सकता है। यह अवसर भी कई बार प्राप्त नहीं होता। प्रथम आश्रम में भूल हो जाने से उसका प्रतिकार फिर नहीं हो सकता। आर्यशास्त्रों के बहुत बड़े क्षेत्र में प्रथम आश्रम के ब्रह्मचर्य को ही सफल करने के विधि-विधानों का वर्णन है। इसी बीज से समस्त शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति और विकास के अंकुर प्रस्फुटित होते हैं। कुमारसंभव काव्य की यह पंक्ति कितनी तेजोमयी है, जिसमें ब्रह्मचारी का वेष धारण किये हुए शिव ने तप करती हुई पार्वती से कहा है-

ममापि पूर्वाश्रमसंचितं तपः । **(5.50)**

अर्थात् आयु के पहले आश्रम में संचित तप मेरे पास है। हे पार्वती! तुम

चाहो तो उसके प्रभाव से अपना मनोरथ पूर्ण करो।

यह तप इन्द्रियों के लिये स्वेच्छा से करने की वस्तु है। मन्त्र में इसी व्यापक नियम की ओर संकेत है। ऋषियों ने भद्र की कामना से स्वयं ही अपने आपको तप में दीक्षित किया। मात्र इन्द्रियों के बाह्य निरोध से तपःप्रवृत्ति अत्यन्त दुष्कर है। यदि उस प्रकार का नियन्त्रण किया भी जाता है, तो भी प्रतिक्रिया बड़ी भयंकर उच्छृङ्खलता को जन्म देती है।

इस प्रकार इन्द्र के सोम-पान में भारतीय ब्रह्मचर्य-शास्त्र का गूढ़ तत्व समाया हुआ है। शरीर की शक्ति को शरीर में ही पचा लेने के रहस्य का नाम सोम-पान है। इससे मनुष्य में एक अद्‌भुत उल्लास व उत्साह प्रकट होता है, जिससे वह कह उठता है- **हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह वेह वा। कुवित् सोमस्यापामिति।** (ऋग्वेद 10.119.9) यह शक्ति अनेक प्रकार की है। स्थूल भौतिक सोम शुक्र है, जिसके द्युम्न या तेज से रोम-रोम चमक उठता है। रेत के भस्म होने से जो कान्ति उत्पन्न होती है, उसका नाम भस्म है। उस प्रकार की भस्म का रमाना सबको आवश्यक है। शिव परम योगी हैं। उन्होंने अखंड ऊर्ध्वरेता बनने के लिये काम को भस्म कर दिया है। इसलिए उनके सदृश कान्तिमती भस्म से भासित तनु और किसी का नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति के ब्रह्माण्ड-रूपी कैलास में शिव का वास है। मस्तिष्क की इस शिवात्मक शक्ति को यदि इस प्रकार संबोधित किया जाए कि उसमें कामभावना बिल्कुल तिरोहित हो जाय, तो वही फल प्राप्त होते हैं, जो इन्द्र के सोम-पान करने से सिद्ध होता है। एक ही महार्घ तत्त्व को द्विविध रूप में कहा गया है। शिवजी काम को भस्म करके षट्‌चक्रों की शक्ति को देह में ही संचित कर लेते हैं। इन्द्र या ब्रह्माण्ड स्थित महाप्राणाधिपति देवता शरीर के रेत या सोम का पान करके अमृतत्व की वृद्धि करता है। वैदिक परिभाषाओं की व्यापकता को जानने वाले विद्वानों के लिए इस प्रकार के कल्पना-भेदों के तारतम्य बहुत सुगम हैं।

कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् में लिखा है कि भगवान् कौषीतकि ने भी ऋषिसंघ के सम्मुख इसी तत्त्व को घोषित किया है-

'प्राणो ब्रह्म' इति ह स्माह कौषीतकिः। **(कौ. उ. 2.1)**

इसी प्रकार पैङ्ग्य ऋषि ने भी अपने तपोमय अनुभव के आधार पर **'प्राणो ब्रह्म'** इस सत्य की व्याख्या की है-

'प्राणो ब्रह्म' इति ह स्माह पैङ्ग्यः। **(कौ. उ. 2.2)**

समस्त उपनिषद्, ब्राह्मण, आरण्यक और संहिताओं में प्राण की महिमा का

वर्णन है। प्राण ही आयुरूप से सब में समाविष्ट है। प्राणों के उत्क्रान्त हो जाने पर आयुमात्र उच्छिन्न हो जाता है।

प्राण ही सब देवों में ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ है। प्राण के स्थित रहने पर अन्य सब देव इस ब्रह्मपुरी में बस जाते हैं। प्राण ही इस शरीर-रूपी नौका की सुप्रतिष्ठा है-

प्राणो वै सुशर्मा सुप्रतिष्ठानः । **(श. 4.4.1.14)**

तथा-

प्राण एष स पुरि शेते । **(गोपथ. पू. 1.39)**

अर्थात्- 'प्राण ही शरीर रूपी पुरी में बसने के कारण पुरुष कहा जाता है'। प्राण ही वसु, रुद्र और आदित्य भेदों से प्रकट होता है। प्राण ही एक संज्ञा अर्क है-

प्राणो वा अर्कः ॥ **(श. 10.4.1.23)**

इस स्थूल देह को प्राण ही अर्चनीय या पूज्य बनाता है। प्राण के निकलते ही यह सड़ने लगता है, इसमें तिरस्कारबुद्धि उत्पन्न हो जाती है और इसे फेंक दिया जाता है। इस कारण प्राण को अर्क कहते हैं। प्राण ही अमृत है-

अमृतमु वै प्राणः। **(श. 9.1.2.32)**

इस मर्त्यपिण्ड को अमृतत्व से संयुक्त रखने वाला प्राण ही है। इन्द्र ने प्रतर्दन से यही कहा-

प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा। तं मामायुरमृतमित्युपास्स्वाऽऽयुः प्राणः प्राणो वा आयुः यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः। प्राणेन हि एवास्मिन् लोकेऽमृतत्वमाप्नोति। **(शांखायन आरण्यक 5.2)**

अर्थात्- 'मैं प्राण-रूप प्रज्ञा (intelligence) हूँ। मुझे आयु और अमृत जानकर उपासना करो। प्राण के रहने तक ही आयु रहती है। प्राण से ही इस लोक में अमृतत्व की प्राप्ति होती है। जो चित्-शक्ति इस मर्त्य-पिण्ड को उठाकर खड़ा कर देती है, अर्थात् जिसके कारण शक्ति संचार दृष्टिगोचर होता है, वह प्राण ही है-

प्राण एव प्रज्ञात्मा।
इदं शरीरं परिगृह्य उत्थापयति।
.....यो वै प्राणः सा प्रज्ञा, या वा प्रज्ञा स प्राणः। **(कौषीतकि 3.3)**

जो कुछ भी जगत् में वा शरीर में प्रज्ञान (intelligence) है, वह प्राण है। प्राण की सत्ता से ही मशक से ब्रह्मपर्यन्त सब में चैतन्य ओत-प्रोत हैं।

प्राण ही उस चित्-शक्ति (चिति-शक्ति) का महान् लिंग या शेप है। प्राण-रूप

शेप (symbol) से उस परम चैतन्य की ही प्रतीति होती है। इस कारण प्राण की एक संज्ञा शुनःशेप भी है। हममें से हर एक प्राणी महाप्राण का एक लिंग है। अश्व और श्वान ये भी प्राण के ही नाम हैं। वस्तुतः वैदिक परिभाषा में जितने चैतन्ययुक्त प्राणी हैं, सभी प्राण के वाचक हैं। पुरुष, गो, अश्व, अजा, अवि, प्राण के ही विशिष्ट नाम हैं। क्या क्षुद्र पिपीलिका और क्या महद् आश्चर्यभूत मनुष्य, सब श्वान-रूप प्राण के लिंग (symbol) हैं। ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार प्राण ही सोम है, प्राण ही अग्नि है। प्राण ही मित्र और प्राण ही वरुण है। मैत्रावरुण-सम्बन्धी मन्त्रों से प्राण-अपान की महिमा या रहस्य बताया गया है। प्राण ही देव है, प्राण ही बालखिल्य है; क्योंकि प्राणों की सन्तति या विस्तार में बाल-मात्र का भी अन्तर नहीं है-

बालमात्रादु हेमे प्राणा असम्भिन्नास्ते यद् बालमात्राद-
संभिन्नास्तस्माद् बालखिल्याः। (श. 8.3.4.1)

प्राण ही ऋक्, यजु और साम है। प्राण ही रश्मियाँ हैं-

सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः।
प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ (प्र. उपनि. 1.8)

प्राण ही संवत्सर है, प्राण ही सत्य है। प्राण एक बड़ा भारी शिक्य या छींका है, जिसमें सब कुछ बँधा हुआ है। (श. 6.7.1.20)

ऋषि पूछता है कि इस ब्रह्मपुरी में कौन नहीं सोता-

तदाहुः कोऽस्वप्तुमर्हति, यद्वाव प्राणो जागार तदेव जागरितम् इति।
(तांड्य 10.4.4)

प्राण का जागना ही महान् जागरण है। प्रश्नोपनिषद् में भगवान् पिप्पलाद ने बताया है-

प्राणाग्नय एवास्मिन् ब्रह्मपुरे जाग्रति। (प्र. उपनि. 4.3)

अर्थात्- प्राण की अग्नियाँ इस ब्रह्मनगरी-रूप शरीर में सदा जागरूक रहती हैं। यजुर्वेद में एक मन्त्र है-

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र
जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ॥ (यजु. 34.55)

प्रायः सभी भाष्यकारों ने इस मन्त्र का प्राणपरक अर्थ किया है। यहाँ तक कि ग्रिफिथ (Griffith) महोदय ने भी यह टिप्पणी दी है।

सप्त ऋषयः	=	**सात प्राण**
सात आप्	=	**सात प्राण या इन्द्रियाँ**
दो जागने वाले देव	=	**प्राणापान**

अर्थात्- सात ऋषि इस शरीर में प्रतिष्ठित हैं। प्रमाद-रहित रहकर सात इसकी रक्षा में सावधान रहते हैं। सात बहिर्मुखी प्राण-धाराएँ या इन्द्रियाँ सोते समय सोने वाले के लोक में संहत हो जाती हैं। उस समय भी स्वप्नरहित रहने वाले दो देव (प्राण और अपान) जागने वाले आत्मा के साथ स्थित रह कर जागते रहते हैं।

प्राण और ऋषि

प्राणों की संज्ञा ऋषि भी है।

प्राणा वा ऋषयः।
इमावेव गोतमभरद्वाजौ।
अयमेव गोतमः, अयं भरद्वाजः।
इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी।
अयमेव विश्वामित्रः, अयं जमदग्निः।
इमावेव वसिष्ठकश्यपौ।
अयमेव वसिष्ठः अयं कश्यपः।
वागेवात्रिः । (बृहदारण्यक उ. 2.2.4)

अर्थात्- सात ऋषि ही सात प्राण हैं। दो कान गौतम और भारद्वाज हैं। दो आँखें विश्वामित्र और जमदग्नि हैं। दो नासिकारन्ध्र वसिष्ठ और कश्यप हैं। वाक् अत्रि हैं। यह सिर देवकोष है, इसे ही स्वर्गलोक भी कहते हैं-

तद्वा अथर्वणः शिरो देवकोशः समुब्जितः ।
तत्प्राणो अभि रक्षति शिरो अन्नमथो मनः॥ (अथर्व. 10.2.27)

अर्थात्- यह सिर भली प्रकार मुँदा हुआ देवों का कोष या डिब्बा है। प्राण, मन और अन्न (या वाक् = स्थूल शरीर) उसकी रक्षा करते हैं।

यह प्रकृति की विचित्रता है कि मानुषी शरीर के सप्तर्षि इसी देवकोष या स्वर्ग नामक सिर में ही प्रतिष्ठित हैं। सिर के सात रन्ध्र या विवर सात ऋषियों की भाँति चमकते हैं। शरीर में सिर ही ज्योति या चेतना का केन्द्र है। वहाँ भी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ज्ञान या ज्योति ही देवों का प्रकाश है। ज्ञान के विविध केन्द्र ही विविध देव हैं। वे सब देव स्वर्ग नामक सिर में ही बसते हैं। इसी तरह सप्तर्षि-संज्ञक प्राणों का स्थान भी मस्तिष्क ही है। बृहदारण्यक उपनिषद्

में विस्तार से इसे समझाया है-

अर्वाग्बिलश्चमस ऊर्ध्वबुघ्नस्तस्मिन्यशो निहितं विश्वरूपम्।
तस्यासत ऋषयः सप्त तीरे वागष्टमी ब्रह्मणा संविदाना॥

(बृह. उपनि. 2.2.3)

इसकी व्याख्या भी उपनिषद् में दी हुई है। अर्थात् यह सिर ही ऊपर पेंदी और नीचे की ओर मुँहवाला चमस या कटोरा है। इसके किनारों पर सप्तर्षि विराजमान है। उसमें ब्रह्म के साथ संवाद करती हुई वाक् आठवीं है।

तात्पर्य यह कि जिस प्रकार ऊपर द्युलोक में सप्तर्षि प्रकाशित हैं, उसी प्रकार इस मस्तिष्क-रूपी द्युलोक में सप्तप्राण-संज्ञक सप्तर्षि विराजमान हैं।

प्राण की विशेष महिमा प्रश्नोपनिषद् (2) में महर्षि पिप्पलाद ने वर्णित की है-

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च॥
प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे।
तुभ्यं प्राण प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि॥
देवानामसि वह्नितमः पितृणां प्रथमा स्वधा।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि॥
इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः॥
यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः।
आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति॥
व्रात्यस्त्वं प्राणैकर्षिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्व नः॥
या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि।
या च मनसि संतता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः॥
प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति॥

अर्थात्- जैसे रथ की नाभि में अरे लगे रहते हैं, उसी तरह ऋक्-यजु-साम, यज्ञ, क्षत्र और ब्रह्म, सब प्राण में प्रतिष्ठित हैं।

हे प्राण, तुम ही प्रजापति (केन्द्र) रूप से गर्भ में विचरते हो, तुम ही नाना आकृतियों से उत्पन्न होते हो। हे प्राण, क्योंकि तुम चक्षु आदि इन्द्रियों (प्राणों) के साथ शरीर के विविध भागों में स्थित रहते हो, इसलिए तुम्हें ही

सब प्रजाएँ अपनी पूजा चढ़ाती हैं।

तुम देवों के लिए सर्वोत्तम हवि के वाहक हो। शरीर की प्राणाग्नि में समर्पित अन्न की आहुति सब इन्द्रिय रूप देवों के पास तुम्हारे द्वारा ही पहुँचती है, और पितरों का भी सर्व प्रथम अन्न तुम ही हो। अथर्वाङ्गिरस ऋषियों का भी- जिन्होंने सर्वप्रथम अग्नि को मथ कर यज्ञ-व्यवहार प्रवृत्त किया- सत्य आचरण तुम ही हो (प्राण की दिव्य प्रक्रियाएँ ही यज्ञ का सत्यात्मक कर्मकाण्ड हैं)।

हे प्राण, तुम अपने तेज से (वस्तुओं का विशकलन करने के लिए) इन्द्र-रूप हो। तुम ही परिपालन करने वाले (विष्णु) हो। तुम अन्तरिक्षसंचारी वायु हो। तुम ही ज्योतिष्पति सूर्य हो।

हे प्राण, तुम मेघ बनकर बरसो इससे तुम्हारी जनता आनन्दित होगी क्योंकि इससे अच्छी फसल होगी और धान्य (अनाज) की प्रचुरता रहेगी।

हे प्राण, तुम व्रात्य हो, अर्थात् व्रत और संस्कारों से परे हो, क्योंकि स्वयं शुद्ध हो। तुम एक ऋषि हो। तुम अन्नाद हो (सोम तुम्हारा अन्न है)। तुम विश्व के पति हो। हम तुम्हारे लिए अन्न समर्पित करते हैं। हे मातरिश्वन्, तुम हमारे पिता हो।

हे प्राण, तुम्हारा जो रूप हमारी वाक्, श्रोत्र, चक्षु और मन में प्रतिष्ठित है, उसे शिवात्मक बनाओ, कृपा करके इस शरीर में से कभी उत्क्रान्त मत हो।

त्रिलोकी में जो कुछ है, सब प्राण के वशीभूत है। हे प्राण! तुम माता के समान हमारी पुत्रवत् रक्षा करो और हमें श्री और प्रज्ञा का वरदान दो।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे। (अथर्ववेद 11.4.1)

अर्थात्- मैं प्राण को प्रणाम करता हूँ, इस प्राण के ही वश में है यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड।

जिस समय आश्रमों में ऋषि और ब्रह्मचारी प्राणविद्या के रहस्यों को जानते थे और प्राण के संयम से मानसिक समाधि, पूर्ण स्वास्थ्य और दीर्घ आयुष्य की साधना करते थे, उस पावन काल का यह प्राण-संगीत है। इसमें कहा है कि हे प्राण, तुम विश्वधायस् जननी के समान हमारी रक्षा करो, हम तुम्हारे पुत्र हैं। ऋषि लोग अपने अन्तेवासियों को प्राण-रूपी माता की गोद में सौंप कर निश्चिन्त हो जाते थे और वे ब्रह्मचारी उस विश्वदोहस् माता के अमृत जैसे सौम्य मधु या दुग्ध का पान करके अमृतत्व और ब्रह्मवर्चस् की प्राप्ति करते थे। सनातन योगविद्या प्राणविद्या का ही दूसरा नाम है। प्राण के रहस्यों का ज्ञान ही सम्प्राप्ति है। जो कुछ भी जगत् में बाहर और भीतर है, कुछ भी प्राण से व्यतिरिक्त नहीं है।

प्राण संवर्ग[1] है-

प्राणो वाव संवर्गः स यदा स्वपिति प्राणमेव वागप्येति प्राणं चक्षुः प्राणं श्रोत्रं प्राणं मनः प्राणो ह्येवैतान् सर्वान् संवृङ्क्त इति।

(छां. उ. 4.3.3.)

प्राण ही संवर्ग है। जब वह (पुरुष) सोता है तब वचन प्राण में ही लीन होता है। प्राण में ही चक्षु, प्राण में ही श्रोत्र, प्राण में ही मन लीन होता है क्योंकि इन सबों का प्राण ही अपने में संहार करता है। **'तौ वा एतौ द्वौ संवर्गौ वायुरेव देवेषु प्राणः प्रापेषु'।**

निश्चय ही वे ये दो संवर्ग हैं- देवों में वायु और वाग् इत्यादि इन्द्रियों में प्राण।

तीन लोक-

वागेवायं लोकः मनोऽन्तरिक्षलोकः प्राणोऽसौ लोकः "वाणी यह पृथिवीलोक है, मन अन्तरिक्षलोक है और प्राण वह स्वर्गलोक है।" इसलिये प्राणायाम के अभ्यास से स्वर्गधाम की प्राप्ति होती है। सब प्रकार के सुख से परिपूर्ण लोक ही स्वर्गधाम है।

पतंग-

स यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धो, दिशं दिशं पतित्वा, अन्यत्रायतनमलब्ध्वा, बन्धनमेवोपश्रयते, एवमेव खलु सौम्य तन्मनो दिशं दिशं पतित्वा, अन्यत्रायतनमलब्ध्वा, प्राणमेवोपश्रयते, प्राणबन्धनं हि सौम्य मन इति।

(छां. उ. 6.8.2)

जिस प्रकार पतंग, डोरे से बंधा हुआ, अनेक दिशाओं में घूमकर, दूसरे स्थान पर आधार न मिलने के कारण, अपने मूल स्थान पर ही आ जाता है, इसी प्रकार निश्चय से हे प्रिय शिष्य! वह मन अनेक दिशाओं में घूम-घूम कर दूसरे स्थान पर आश्रय न मिलने के कारण, प्राण का ही आश्रय करता है, क्योंकि हे प्रिय शिष्य! मन प्राण के साथ ही बंधा है।

इस प्रकार प्राण का मन के साथ संबन्ध है। यही कारण है कि प्राणायाम से प्राण बलवान् होने पर मन भी बलिष्ठ होता है। प्राण की चंचलता से मन चंचल होता है और प्राण की स्थिरता से मन भी स्थिर होता है। प्राण से मन का संयम होने के कारण अन्य इन्द्रियाँ भी प्राण के निरोध से स्वाधीन होती हैं।

---

1. **सर्वेषां संग्रहीता ग्रसयिता**

योग एक जीवन दर्शन

योग एक जीवन दर्शन है, योग आत्मानुशासन है, योग एक जीवन-पद्धति है, योग व्याधिमुक्त व समाधियुक्त जीवन की संकल्पना है। योग आत्मोपचार एवं आत्मदर्शन की श्रेष्ठ आध्यात्मिक विद्या है। योग व्यक्तित्व को वामन से विराट् बनाने की या समग्र रूप से स्वयं को रूपान्तरित व विकसित करने की आध्यात्मिक विद्या है। योग मात्र एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति नहीं अपितु योग का प्रयोग परिणामों पर आधारित एक ऐसा प्रमाण है जो व्याधि को निर्मूल करता है। अत: यह एक सम्पूर्ण विधा का, शरीर रोगों का ही नहीं बल्कि मानस रोगों का भी, चिकित्सा शास्त्र है।

योग एलोपैथी की तरह कोई लाक्षणिक चिकित्सा नहीं अपितु रोगों के मूल कारण को निर्मूल कर हमें भीतर से स्वस्थता प्रदान करता है। योग को मात्र एक व्यायाम की तरह देखना या वर्ग विशेष की मात्र पूजापाठ की एक पद्धति की तरह देखना संकीर्णतापूर्ण, अविवेकी दृष्टिकोण है। स्वार्थ, आग्रह, अज्ञान एवं अहंकार से ऊपर उठकर योग को हमें एक सम्पूर्ण विज्ञान की तरह देखना चाहिए।

योग की पौराणिक मान्यता है कि इससे अष्टचक्र जागृत होते हैं एवं प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से जन्म-जन्मान्तर के संचित अशुभ संस्कार व पाप परिक्षीण होते हैं।

हमने अष्टचक्रों की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि की जब अन्वेषणा की एवं प्राचीन सांस्कृतिक शब्दों का जब अर्वाचीन चिकित्सा विज्ञान के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया तो पाया कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, हृदय, अनाहत, आज्ञा, एवं सहस्रार चक्र क्रमश: reproductory, excretory, digestive, skeletal, circulatory, respiratory, nervous एवं endocrinal system से संबद्ध हैं। मूलाधार से सहस्रार चक्र तक अष्टचक्रों का जो कार्य है वही कार्य reproductory system से लेकर endocrinal system का है। क्रियात्मक योगाभ्यास के आठ प्राणायाम इन्हीं अष्टचक्रों अथवा आठ systems को सक्रिय एवं संतुलित बनाते हैं।

एक-एक system के असन्तुलन से अनेक प्रकार की व्याधियाँ या विकार उत्पन्न होते हैं। भाषा कुछ भी हो-विज्ञान एवं अध्यात्म का तात्पर्य एक ही है। भाषा तो मात्र भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है, लेकिन चार सौ वर्षों की

गुलामी की आत्मग्लानि के दौर से हम कुछ ऐसे गुजरे कि हमें वात, पित्त व कफ की बजाय anabolism, catabolism, metabolism ठीक से समझ आता है।

अपनी परम्परा, संस्कृति व ज्ञान को हम अज्ञानवश आत्मगौरव के रूप में न देखकर आत्मग्लानि से भर गये। 'चक्र' पढ़कर चक्र में पड़ गये परन्तु 'system' शब्द को पढ़ कर हम अपने आप को Systematic कहने लग गये जबकि प्राचीन ज्ञान व अर्वाचीन ज्ञान का तात्पर्य एक ही था- सत्य का बोध।

प्रज्ञापराधो हि सर्वरोगाणां मूलकारणम्[1] (चरक) के आयुर्वेदोक्त सिद्धान्त के बजाय Stress is the main cause of all diseases -यह वचन हमें अधिक वैज्ञानिक लगने लगा। अब तो आग्रह एवं अज्ञान छोड़ो एवं सत्य से नाता जोड़ो। उदाहरण के लिए endocrinal system के असन्तुलन से तनाव व तनावजनित हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, अवसाद, मोटापा व मधुमेह आदि अनेक जटिल रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी तरह से स्केलिटल सिस्टम के असंतुलन से शताधिक प्रकार का (सौ से अधिक प्रकार का) तो ऑर्थराइटिस होता है एवं व्यक्ति मांसपेशियों की अनेक विकृतियों का शिकार हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि आन्तरिक सिस्टम में आया किसी भी तरह का असंतुलन ही रोग है जबकि भीतर का संतुलन ही आरोग्य है।

लाखों करोड़ों लोगों पर योग के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रयोग से हमने यह पाया है कि मुख्यत: आठ प्राणायामों के विधिपूर्वक एक सुनिश्चित समय एवं संकल्पबद्ध अभ्यास से हमारे आठों चक्र या आठों सिस्टम पूरी तरह से संतुलित हो जाते हैं। परिणामत: हम योग से एक निरामय जीवन पाते हैं। साथ ही हम दवा के रूप में जो कैमिकल साल्ट या हार्मोन बाहर से ले रहे थे, धीरे-धीरे उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि जो हम बाहर से ले रहे थे वे सारे कैमिकल साल्ट या हार्मोन्स हमें भीतर से ही संतुलित मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं।

योग एलोपैथी की तरह एक '**पिजन होल ट्रीटमेन्ट**' न होकर आरोग्य की एक सम्पूर्ण संकल्पना है। आपातकालीन चिकित्सा व शल्य चिकित्सा को छोड़कर शेष चिकित्सा के सभी क्षेत्रों में योग एक श्रेष्ठतम चिकित्सा विधा है।

---

1. तुलना करें-

बुद्ध्या विषमविज्ञानं विषमं च प्रवर्तनम्।
प्रज्ञापराधं जानीयान् मनसो गोचरं हि तत्॥ (च. शारीरस्थान 1.109)
धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोषप्रकोपनम्॥ (च. शारीरस्थान 1.102)

योग के साथ कुछ जटिल रोगों में यदि आयुर्वेद का भी संयुक्त प्रयोग होता है तो उपचार का असर अत्यधिक प्रभावी हो जाता है।

उक्त आरोग्य पक्ष के साथ-साथ योग का आध्यात्मिक पक्ष भी बहुत ही विराट् है। यद्यपि योग का मुख्य लक्ष्य समाधि की प्राप्ति या स्वरूप की उपलब्धि या परम सत्य का साक्षात्कार है, तथापि योग से प्राप्त होने वाली समाधि की इस यात्रा में बीच के अवरोध रूप रोग तो स्वत: ही समाप्त हो जाते हैं, अर्थात् योग से व्याधि की परिसमाप्ति तो योग का बाइ-प्रोडक्ट है। मुख्य लक्ष्य तो समाधि ही है, यह हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए। योग के बारे में ये विचार मात्र बौद्धिक व्यायाम नहीं, कोई सपना, प्रलोभन या आश्वासन नहीं, अपितु योग के प्रयोग का यथार्थ है। मैं आश्वस्त हूँ कि आगे आने वाला विश्व आग्रह रहित होकर योग को आत्मसात् करेगा और योग से एक शान्त, स्वस्थ, संवेदनशील व समृद्ध राष्ट्र व विश्व का निर्माण होगा। साइंस एंड स्प्रीच्युअलिटी, भौतिकवाद व अध्यात्मवाद के समन्वय से पूर्ण विकास होगा। योग से आत्मधर्म व राष्ट्रधर्म जगेगा। आत्मकल्याण व विश्व कल्याण के पथ पर विश्व आगे बढ़ेगा। जातिवाद, मज़हबवाद, प्रान्तवाद, भाषावाद, मार्क्सवाद, माओवाद व मनुवाद आदि वादों के विवाद से निकलकर व्यक्ति राष्ट्रवाद व मानवतावाद को स्वीकार करेगा और भारत विश्व की सर्वोच्च सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक व सामाजिक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित होगा। अशान्ति में भय, घृणा, तृष्णा, असंतोष, अविवेक, क्रोध, असंयम एवं समस्त वासनात्मक भाव उत्पन्न होते हैं। प्राणायाम एवं ध्यान से जब व्यक्ति का मन शांत हो जायेगा तो समाज, राष्ट्र व विश्व में व्याप्त भय, भ्रम, हिंसा, अपराध व भ्रष्टाचार भी मिट जायेगा और उपासना की वृत्ति से वासना की प्रवृत्ति पर भी नियन्त्रण आ जायेगा। भोगवादी विद्रूपताओं से मुक्ति का एकमात्र समाधान यही योगवादी दृष्टिकोण है। हिंसा, अपराध व कामोन्मत्तता के वैश्वीकरण के विकराल काल का अन्त योग की वैश्विक प्रतिष्ठापना से ही सम्भव है, अन्यथा तो महाविनाश से कोई बचा नहीं सकता।

चिकित्सा विज्ञान के दो सिद्धान्त

सिम्प्टोमैटिक एवं सिस्टेमिक ट्रीटमेन्ट-आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान सिम्टम्स पर आधारित चिकित्सा प्रणाली का संवाहक है, वहीं योग एवं आयुर्वेद सिस्टम को संतुलित करके समस्त रोगों को निर्मूल करने का विज्ञान है। मलेरिया एवं टी. बी. आदि बीमारियों को छोड़कर एलोपैथी में हाइपरटेंशन, डायबिटीज, अस्थमा व थायरॉयड आदि व्याधियों को मेन्टेन करने के लिए दवा दी जाती है। इन बीमारियों का परमानेन्ट क्योर एलोपैथी में नहीं है जबकि योग एवं प्राकृतिक जीवन शैली के द्वारा बी.पी., थायरॉयड व अस्थमा जैसी बीमारियाँ क्योर हो जाती हैं। प्राणायाम को यदि हम दो भागों में विभक्त करें, एक अनुलोम-विलोम के पहले व दूसरा अनुलोम-विलोम के बाद, तो भस्त्रिका, कपालभाति व बाह्य प्राणायाम की प्रक्रियाएं जहां हमारे रिप्रोडक्टरी, एक्सक्रीटरी, डायजेस्टिव व स्केलिटल सिस्टम को समग्र रूप से संतुलित व स्वस्थ बनाती हैं, वहीं अनुलोम-विलोम, भ्रामरी, उद्गीथ व प्रणव प्राणायाम सर्क्युलेटरी, रेस्पिरेटरी, नर्वस व इन्डोक्राइन सिस्टम को पूर्णतः संतुलित कर हमें सम्पूर्ण आरोग्य देते हैं। बहुत से लोगों के मन में एक प्रश्न होता है कि एलोपैथी में प्रत्येक रोग की पृथक् दवा होती है जबकि योग में मुख्यतः आठ प्राणायाम एवं कुछ यौगिक क्रियाओं के अभ्यास से सब रोग एक साथ कैसे ठीक हो सकते हैं। वैसे भी एक सामान्य व्यक्ति के मन में इस शंका का उठना स्वाभाविक ही है कि जब रोग अलग-अलग तो योग सबके लिए एक जैसा ही कैसे? इसके लिए प्रथम तो हमें शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान को ठीक से समझना होगा और योग विज्ञान की प्रक्रियाओं के प्रभाव का भी हमें वैज्ञानिक विश्लेषण करना होगा।

प्रथम बात तो हम सब के शरीर अलग-अलग हो सकते हैं परन्तु शरीर एवं मन पृथक्-पृथक् होते हुए भी हमारे शरीर की अन्तःप्रणाली, हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियां, प्रजनन संस्थान, मूलाधार चक्र से लेकर सहस्रार या ब्रह्मरन्ध्र चक्र तक हम सब का भौतिक शरीर एवं मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकारादि से निर्मित हमारा भावनात्मक शरीर एक जैसा ही है। वात, पित्त एवं कफ के रूप में सबकी प्रकृति त्रिदोषात्मक है। सत्व, रज एवं तम के रूप में सब का मन त्रिगुणात्मक है। मनुष्य में बहुत सूक्ष्म अन्तर, मात्र डी.एन.ए. तथा संस्कारों के स्तर पर है। डी.एन.ए. के स्तर पर अन्तर सब मनुष्यों की अलग-अलग पहचान बनाने के लिए है तथा संस्कारों के स्तर पर अन्तर हमारे इस जन्म एवं पूर्वजन्मों के संचित कर्मों एवं

ज्ञान के आधार पर है। दोनों स्तरों पर यह अन्तर सबकी स्वतन्त्र पहचान मात्र के लिए है। चिकित्सा के क्षेत्र में यह अन्तर महत्वपूर्ण नहीं है। आधुनिक चिकित्सा में स्वस्थ व्यक्ति के लिये बनाये गए मानदंड, चाहे वे रक्त के स्तर पर परीक्षण हों या फिर हार्मोन्स, हृदय, यकृत्, वृक्क या मस्तिष्क से सम्बन्धित परीक्षण हों, सब की जांच की पद्धति एक जैसी होती है। जैसे कि सबका ब्लड प्रेशर, शुगर, कोलेस्ट्रॉल, आदि मापने या एन्जियोग्राफी, सी.टी. स्कैन, एम. आर. आई., अल्ट्रासाउण्ड, एक्सरे व एण्डोस्कोपी आदि करने का तरीका व उसके मापदण्ड सब कुछ एक जैसा ही होता है। सभीकी शुगर खाली पेट 100 से नीचे व सबका कोलेस्ट्रॉल 150 से कम ही होना चाहिए। सबके लीवर, किडनी, व हार्ट का आकार, भार व कार्यप्रणाली जब एक जैसी ही हो सकती है तो फिर एक जैसा योग होने में क्या बाधा है? एक जैसा योग सब मनुष्यों के एक जैसे सिस्टम को ठीक करने के लिये पर्याप्त है। वात, पित्त व कफादि दोषों को संतुलन में रखने के लिये है। जैसे कि आयुर्वेद में यद्यपि वात, पित्त व कफादि दोषों के लिये अलग-अलग औषधियाँ होती हैं, परन्तु गिलोयादि औषधियाँ त्रिदोषशामक होती हैं, वैसे ही योग-प्राणायाम त्रिदोषशामक है। तथा इसके साथ योग हमें सत्त्व, रज, तम आदि गुणों से पार गुणातीत अवस्था में ले जाता है। जैसा कि योगसूत्र में महर्षि पतंजलि स्वयं कहते हैं- **'पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति'** (कै. पा. 4.34)। योग हमें मन से भी पार चेतना के द्वार पर ले जाता है। **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"** (स. पा. 1.2)। योग इस जन्म व पूर्वजन्म के संचित संस्कारों से मुक्त कर हमें अपने स्वरूप का बोध कराता है। अतः योग सबके लिए एक जैसा होता है क्योंकि हम सब पृथक्-पृथक् होते हुए भी मूलतः एक जैसे ही हैं।

योग हमारे सिस्टम पर, मन पर, दोषों पर, व संस्कारों पर एक साथ एक जैसा प्रभाव डालकर प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक एवं भावनात्मक रूप से पूर्णरूपेण स्वस्थ कर देता है और अन्त में आत्मस्थ कर देता है, जबकि ऐलोपैथी की दवाएं सिम्टम पर काम करती हैं, जो सिम्टम पर आधारित होने से भिन्न-भिन्न होती हैं। यही मूलभूत भेद है योग व ऐलोपैथी में।

ऐलोपैथी में दवा, कैमीकल साल्ट या हार्मोन्स आदि बाहर से रोगी व्यक्ति के शरीर में डालकर रोगी के भीतर इन कैमिकलादि का संतुलन करने की चेष्टा की जाती है। जबकि हम प्राणायामादि के अभ्यास के द्वारा कैमीकल साल्ट या हार्मोन्स आदि को भीतर से ही संतुलित रखते हुए अपने भीतर ही उन्हें उत्पन्न करते हैं। इस विज्ञान के बारे में समझने के बाद यह अज्ञान दूर हो जाता है कि

एक योग अनेक रोगों को एक साथ कैसे ठीक कर देता है। योग की तरह ही आयुर्वेद के सन्दर्भ में भी लगभग यही सिद्धान्त लागू होता है। योग की तरह आयुर्वेद की भी जड़ी-बूटियां एवं अन्य औषधीय प्रक्रियाएं हमारे आठों सिस्टमों के ऊपर ही कार्य कर उनकी अन्तःप्रणाली को संतुलित करती हैं। उदाहरण के लिए शिलाजीत समस्त रोगों में काम करती है। चरकसंहिता में भी कहा है-

न सोऽस्ति रोगो भुवि साध्यरूपः शिलाह्वयं यं न जयेत् प्रसह्य।[1] (चरक)

अर्थात् दुनिया में कोई ऐसा रोग नहीं है जो शिलाजीत से ठीक नहीं होता हो। क्योंकि शिलाजीत का रिप्रोडक्टरी सिस्टम से लेकर रेस्पिरेटरी सिस्टम तक प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अर्थात् इससे स्पर्म काउंट बढ़ता है व अन्य यौन विकार दूर होते हैं। मूत्र संस्थान की विकृतियां मिटती हैं। साथ ही पाचन संस्थान को भी संतुलित करके यकृत् व अग्न्याशय के विकारों को दूर करने में यह उपयोगी है। हड्डियों एवं मांसपेशियों को सुदृढ़ करके स्केलिटल सिस्टम व सर्क्युलेटरी सिस्टम को ठीक कर शरीर का ट्रांस्पोर्टेशन पूरी तरह ठीक कर देता है एवं फेफड़ों को ताकत देकर शिलाजीत रेस्पिरेटरी सिस्टम की तमाम बीमारियों को दूर कर देता है। जब ये छह सिस्टम ठीक से कार्य करते हैं तो हमारा ऑटोनॉमिक व वोलन्टरी नर्वस सिस्टम भी नियन्त्रित रहता है। इसी प्रकार शरीर की सम्पूर्ण अन्तःप्रणाली जब संतुलित रहती है तो अन्तःस्रावी ग्रंथियां अर्थात् हमारा इन्डोक्राइन सिस्टम भी ठीक रहता है। इस प्रकार परोक्ष रूप से शिलाजीत आठों सिस्टमों को ऊर्जा व आरोग्य देता है। अतः अकेले शिलाजीत सब रोगों को ठीक करता है। शिलाजीत की तरह ही अन्य भी आयुर्वेद की एक-एक औषध व एक-एक जड़ी-बूटी अनेकों रोगों को दूर करती हैं। ऐलोपैथी में ऐसा नहीं है। वहां प्रत्येक रोग की अलग दवा है क्योंकि वह दवा कुछ लक्षणों (सिम्पटम्स) को नियन्त्रित करती है। क्योंकि सिस्टम पर काम नहीं करती इसलिए ऐलोपैथी की एक दवा अनेक रोगों पर काम नहीं करती। हम योग व आयुर्वेद से लाक्षणिक चिकित्सा न करके कारण का निवारण करते हैं। मूल को ठीक करते हैं अर्थात् मूलाधार से लेकर सहस्रार तक अष्टचक्र या आठ सिस्टमों को स्वस्थ व ऊर्जावान् बनाते हैं। बस यही सैद्धांतिक भेद है, हमारी परम्परागत प्राचीन चिकित्सा पद्धति व अर्वाचीन चिकित्सा पद्धति में। इसलिए दोनों चिकित्सा विधाओं का दर्शन ही अलग-अलग है। अतः चिकित्सा को लेकर मतभेदों को मिटाना है तो अज्ञान, आग्रह, स्वार्थ व अहंकार से ऊपर उठकर दोनों चिकित्सा

---

1. आयुर्वेदप्रकाश श्रीमद्माधव-उपाध्याय। (अ. 4.128)

विधाओं की सैद्धान्तिक मान्यताओं को ठीक से समझना होगा और रोगों से त्रस्त मनुष्य के लिए जो चिकित्सा विधा श्रेयस्कर है, उसे आग्रह रहित होकर स्वीकार करना होगा। जीवनरक्षक प्रणाली, शल्य चिकित्सा, आपात चिकित्सा (emergency) एवं टी.बी. व मलेरियादि चिकित्सा आवश्यकताओं में ऐलोपैथी चिकित्सा उत्कृष्ट है। साथ ही रोग निदान के क्षेत्र में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने श्रेष्ठ कार्य किया है। दूसरी तरफ शरीर की अन्तःप्रणाली को योग व आयुर्वेद से ठीक करके हम अस्थमा, उच्च रक्तचाप, आर्थराइटिस, डिप्रेशन, माइग्रेन पेन, यकृत्, वृक्क व आन्त्ररोग तथा हृदयरोग आदि जीर्ण रोगों से पूर्णतः मुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार योग व आयुर्वेद के ज्ञान का उपयोग विश्व कल्याण के उद्देश्य से करने के लिये हमें अवश्य ही आगे आना चाहिए। रोगी का हित सर्वोपरि है। हमें अपने वैयक्तिक व्यावसायिक हितों से ज्यादा रोगीहित को प्राथमिकता देनी चाहिए।

प्राणायाम का अनुभूत सत्य

1. 3 वर्ष की आयु से बच्चे प्राणायाम एवं सूक्ष्म व्यायाम कर सकते हैं एवं वृद्ध पुरुष भी अन्तिम श्वास तक प्राणायाम अवश्य करें। बच्चों को आसनों का अभ्यास 5 वर्ष की आयु से प्रारंभ करना चाहिए।

2. 5 से 10 वर्ष तक के बच्चों को भस्त्रिका 1 मिनट, कपालभाति 5 बार, बाह्य प्राणायाम 3 बार, अनुलोम-विलोम 5 मिनट, भ्रामरी व उद्गीथ 3 से 5 बार एवं 1 से 2 मिनट प्रणव प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। इससे वे बलवान्, प्रज्ञावान्, बुद्धिमान्, चरित्रवान्, ऊर्जावान्, साहसी, पराक्रमी, स्वाभिमानी, कर्मठ व पुरुषार्थी बनेंगे। प्राणायाम से बच्चों का सैल्फ डिसीप्लिन व सैल्फ कॉन्फीडेंस बढ़ेगा। प्राणायाम से बच्चों का कन्सेन्ट्रेशन भी बढ़ता है। अतः आई क्यू लेवल बढ़ेगा एवं आईसाइट व हाइट सदा अच्छी रहेगी। बच्चों में गुस्सा, हिंसा, अपराध व उच्छृङ्खलता नहीं रहेगी अपितु वे शान्त, संवेदनशील, सहिष्णु, प्रेम, करुणा, वात्सल्य से भरे हुए राष्ट्रभक्त, गुरुभक्त एवं मातृ-पितृभक्त बनेंगे।

3. 10 से 18 वर्ष के बच्चों को भस्त्रिका 2 मिनट, कपालभाति व अनुलोम-विलोम 10-10 मिनट; बाह्य, भ्रामरी व उद्गीथ 5-5 बार एवं प्रणव प्राणायाम 2 से 3 मिनट तक करना चाहिए।

4. एक स्वस्थ व्यक्ति यदि मात्र 5-5 मिनट भी कपालभाति व अनुलोम-विलोम

प्राणायाम करता है तो वह निश्चित ही रोगग्रस्त व तनावग्रस्त होने से बच सकता है। यदि 10-10 मिनट कपालभाति, अनुलोम-विलोम करता है तो भोग भोगता हुआ भी रोगी होने से बच सकता है अन्यथा बिना योग के भोग रोग पैदा करेंगे। यदि 15-15 मिनट कपालभाति, अनुलोम-विलोम करता है तो बी.पी., शुगर, अस्थमा, थायरॉयड, ज्वाइन्ट पेन, गैस, कब्ज, अम्लपित्त आदि सामान्य रोगों से मुक्त हो जाता है और 30-30 मिनट कपालभाति, अनुलोम-विलोम करने से कैंसर जैसे असाध्य रोगों से भी मुक्त हो जाता है।

5. कैंसर, सफेद दाग, सोरायसिस व रूमेटिक ऑर्थराइटिस आदि असाध्य रोगों में निम्नलिखित समयानुसार अभ्यास से रोगियों को नया जीवन मिला है। इस तालिका में मैं अपने सम्पूर्ण जीवन का सार तत्व दे रहा हूँ।

प्राणायाम	अनुमानित समय	अनुमानित संख्या प्रतिदिन दो समय	अनुमानित मासिक संख्या	अनुमानित नौ मासिक संख्या
भस्त्रिका	10-10 मिनट दो समय प्रातः-सायंकाल	240	7200	64800
कपालभाति	30-30 मिनट दो समय	3600	108000	972000
बाह्य	5-5 मिनट, दो समय	22	660	5940
उज्जायी	5-5 मिनट, दो समय	22	660	5940
अनुलोम-विलोम	30-30 मिनट, दो समय	180	5400	48600
भ्रामरी	5-5 मिनट, दो समय	22	660	5940
उद्गीथ	5-5 मिनट, दो समय	22	660	5940
प्रणव	5-5 मिनट, दो समय	30	900	8100
कुल योग				**1117260**

संक्षेप में अभी तक मेरे अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि डेढ़-डेढ़ घंटा सुबह-शाम प्रतिदिन कुल लगभग 3 घंटा प्राणायाम करने से 9 माह में सभी प्राणायाम लगभग 11 लाख की संख्या में निष्पन्न हो जाते हैं। अर्थात् 11 लाख प्राणायाम का अनुष्ठान करने वाला कैंसर, सफेद दाग, सोरायसिस, मल्टीपल स्क्लेरॉसिस, एस.एल.ई. व रूमेटिक आर्थराइटिस जैसी असाध्य बीमारियों से मुक्त हो जाता है। इस अवधि में साधक को जो मानसिक व आध्यात्मिक लाभ होगा, वह अनिर्वचनीय है। प्राचीनकाल में गायत्री व महामृत्युंजय आदि के 11-11

लाख के जप व यज्ञ आदि के अनुष्ठान की सिद्धियों का वर्णन आता है। उन अनुष्ठानों से क्या-क्या सिद्धियाँ मिलती हैं यह एक विचारणीय विषय हो सकता है। परन्तु प्राणायाम के 11 लाख के अनुष्ठान की सिद्धियों के लाभ के समस्त प्रमाण हमारे पास हैं।

इसमें मुख्यत: कपालभाति लगभग 9 लाख बार एवं अनुलोम-विलोम का लगभग 51 हजार बार अभ्यास होता है व लगभग 9 माह तक का यह अनुष्ठान व्यक्ति को एक नया जन्म देता है। जैसे कि माँ के उदर से बच्चे का नौ माह में जन्म होता है वैसे ही प्राणरूपी माता से भी हमें नवजन्म मिलता है। जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद् का ऋषि कहता है **'प्राण: पिता प्राणो माता'** अर्थात् प्राण माता-पिता हैं। जैसे माता-पिता के मिलन से संतान उत्पन्न होती है वैसे ही प्राण रूपी माता-पिता हमें एक नया जन्म देते हैं। यदि माता-पिता के शरीर से भी हमारे शरीर या चित्त में कोई वंशानुगत रोग या चित्तवृत्ति दोष आया है तो योग से उसका भी निराकरण होता है। हमने देखा है कि माता-पिता से वंशानुगत प्राप्त उच्च रक्तचाप, चर्म रोग, अस्थमा व आर्थराइटिस जैसी बीमारियां एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहंकार आदि चित्तवृत्ति दोष भी जो सन्तति में माता-पिता से आ गये थे, वे प्राणायाम के सतत अभ्यास से मिट गये।

पेट से श्वसन की मान्यता अवैज्ञानिक

परमात्मा या प्रकृति ने मानव शरीर की संरचना कुछ इस प्रकार की है कि मनुष्य की श्वास नली 24 घंटे खुली रहती है। एपिग्लोटिस नाम का एक कार्टिलेज होता है। जब हम भोजन करते हैं तो यह आहार (खाद्य पदार्थ) के अन्दर प्रवेश करते समय ढक्कन की तरह श्वास नली को बन्द कर देता है। शेष समय सदा खुला रहता है। हमारे यहाँ परम्परा से खाते समय बोलने का निषेध भी इसीलिए है कि श्वास नली का ऊपरी हिस्सा, जिसे लैरिंक्स कहते हैं, बोलने तथा श्वास को अन्दर लेने में मदद करता है। अत: जब कभी यदि हम खाते समय बोलते हैं तो लैरिंक्स को क्योंकि उस समय कार्य करना पड़ता है अत: एपिग्लोटिस लैरिंक्स को बन्द नहीं कर पाता और हमारा आहार श्वास नली में चला जाता है और हमें खांसी हो जाती है। यह स्पष्टीकरण इसलिए दिया कि हमारी आहारनली व श्वासनली दोनों पृथक्-पृथक् हैं। हम भोजन करते हैं तो वह सीधा आहारनली से उदर में जाता है तथा श्वास (प्राण) श्वासनली से सीधा फेफड़ों में जाता है और यह एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सत्य है कि हमारे पेट में

आमाशय, यकृत् व आन्त्र आदि कोई भी ऐसा अवयव नहीं है जो ऑक्सीजन को अवशोषित कर सके। मात्र फेफड़ों से ही रक्त कणिकाएं ऑक्सीजन को अवशोषित कर हृदय सहित पूरे शरीर में सम्प्रेषित करती हैं। अतः सदा 'डायफ्रैग्मेटिक डीप ब्रीदिंग' या 'थोरेसिक ब्रीदिंग अप टु डायफ्राम' यह प्राणायाम के समय श्वसन की सही प्रणाली है। 'एब्डोमिनल ब्रीदिंग' पूर्णतया अवैज्ञानिक व निष्प्रयोजन है। निष्प्रयोजन से अभिप्राय है कि यदि कोई भस्त्रिका या अनुलोम-विलोम आदि प्राणायामों में पेट से श्वसन करता भी है तो क्योंकि पेट में ऑक्सीजन अवशोषित तो होगा नहीं, अतः प्राणायाम का कोई लाभ आप अर्जित नहीं कर पायेंगे। पेट से श्वसन का भ्रम इसलिए पैदा हो जाता है क्योंकि जब हम गहरा श्वास भरते हैं तो वह श्वास सदा फेफड़ों में ही जाता है परन्तु फेफड़ों में प्राण के प्रवेश से डायफ्राम फूल जाता है जो हमारे फेफड़ों और पेट के ठीक बीच में होता है और एक आम आदमी को ऐसा लगता है कि पेट में श्वास जा रहा है जबकि वस्तु-स्थिति बिल्कुल साफ है कि श्वास तो फेफड़ों में ही जा रहा है। डायफ्राम के फूलने से लगता है कि पेट फूल रहा है। इन सब तथ्यों के बावजूद कोई भी पेट से श्वसन करता या कराता है तो वह पूर्णतः अवैज्ञानिक है। दुर्भाग्य से अधिकांश योगाचार्यों ने भी अपनी पुस्तकों में शरीर विज्ञान का पूरी तरह ज्ञान न होने के कारण पेट से दीर्घ श्वसन का विधान किया हुआ है, जो कि तर्क व युक्ति के विरुद्ध होने के कारण स्वीकार्य नहीं है।

वायु के घटक

मनुष्य श्वसन के लिए जिस वायु को ग्रहण करता है उसे हम ऑक्सीजन कहते हैं तथा प्रश्वास के द्वारा जिस वायु का निष्कासन करता है उसे कार्बन डाइऑक्साइड कहते हैं। यह बात आंशिक रूप में सत्य है। वास्तविकता यह है कि हम जो वायु लेते हैं उसमें अधिक भाग नाइट्रोजन का होता है तथा जो हम वायु छोड़ते हैं उसमें भी अधिक भाग नाइट्रोजन का ही होता है परन्तु हमारे शरीर की आंतरिक संरचना इस प्रकार की है कि फेफड़ों से नैसर्गिक रूप से हमारी रक्त कणिकायें ऑक्सीजन को ही अवशोषित करती हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड को छोड़ देती हैं। नाइट्रोजन व कार्बन डाइऑक्साइड आदि अन्य वायु के घटक हमारे शरीर में अवशोषित नहीं हो पाते। अतः नाइट्रोजन आदि वायु के अन्य घटक शरीर में प्रविष्ट होते हैं और बिना अवशोषित हुए ही वापस निकल आते हैं। पेड़-पौधों की नैसर्गिक श्वसन क्रिया हमसे बिल्कुल विपरीत है। वे कार्बन डाइऑक्साइड लेते हैं तथा ऑक्सीजन छोड़ते हैं। पौधे अपनी जड़ों

से नाइट्रोजन अवशोषित करके पोषित होते हैं। यह एक ईश्वरीय चमत्कार भी है कि एक ऑक्सीजन पर जीवित रहता है तो दूसरा कार्बन डाइऑक्साइड पर। दोनों में ही जीवन है परन्तु जीवन के आधार अलग-अलग हैं। यह प्राकृतिक सन्तुलन के लिए जरूरी भी है। अतः ईश्वरीय जैविक सृष्टि की संरचना भी स्वयं में एक बड़ा आश्चर्य है। अतः मैं तो विनोद में कहता हूँ कि मानव जीवन निर्वहन के लिए जितनी ऑक्सीजन लेता है उसके बदले में वृक्ष लगाकर यदि उतनी ऑक्सीजन प्रकृति को वापस नहीं लौटाता तो परमात्मा उसको अगला जन्म वृक्ष का देते हैं कि जाओ! जितनी ऑक्सीजन ले चुके हो, पेड़ बनकर उसको लौटाकर आओ।

पाठकों के परिज्ञान हेतु हम वायु के घटकों की तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं।

वायु के घटक

नाइट्रोजन	-	78.09 प्रतिशत
ऑक्सीजन	-	20.95 प्रतिशत
आर्गोन	-	0.93 प्रतिशत
कार्बन डाइऑक्साइड	-	0.03 प्रतिशत

तथा हाइड्रोजन, नियॉन, हीलियम, मीथेन, क्रिप्टॉन आदि विरल गैसें

प्राणायाम के वैज्ञानिक प्रमाण

योग के प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से करोड़ों लोगों पर प्रयोग करते हुए हमारे पास जो परिणाम आए, वे प्रमाण आज चिकित्सा के क्षेत्र में एक नए संवाद को जन्म दे रहे हैं। योग-प्रयोग-परिणाम-प्रमाण के क्रम में हमारे पास योग पर क्लिनिकल कन्ट्रोल ट्रायल से लेकर हजारों-लाखों रोगियों की योग करने से पूर्व एवं योग करने के बाद की साइंटिफिक क्लिनिकल रिपोर्ट, कम्पेरेटिव स्टडीज़, पैथोलॉजिकल रिपोर्ट व अलग-अलग रोगों में योग करने के पूर्व एवं योग करने के पश्चात् शरीर में आने वाले आरोग्यप्रद परिवर्तनों को दर्शित करने वाली अन्य रिपोर्ट, ई.सी.जी, पी.एफ.टी., एन्जियोग्राफी, बायोप्सी, बोन मिनरल डेन्सिटी रिपोर्ट व लाखों रोगियों पर योग के मनोदैहिक प्रभाव (साइकोसोमेटिक इफैक्ट ऑफ योग) की विस्तृत रिपोर्ट श्रद्धेय आचार्य बालकृष्ण द्वारा लिखित अब तक योग के क्षेत्र की सबसे अधिक वैज्ञानिक व प्रामाणिक पुस्तक 'विज्ञान की कसौटी पर योग' (योग इन सिनर्जी विद मेडिकल साइंस) में सम्पूर्ण वैज्ञानिक प्रमाण हैं। केवल इतना ही नहीं; कैंसर, एड्स, हृदय रोग, हैपेटाइटिस, टी.बी., थायरॉयड, सफेद दाग,

सोरायसिस, रूमेटिक आर्थराइटिस, इन्फर्टीलिटी व एम. एस. आदि लगभग सभी रोग योग से ठीक हुए, इसके वैज्ञानिक प्रमाण आपको 'विज्ञान की कसौटी पर योग' पुस्तक में उपलब्ध हो जायेंगे। इसलिए आप सभी पाठकों से मेरा विनम्र आग्रह होगा कि आप स्वयं एक बार 'विज्ञान की कसौटी पर योग' (योग इन सिनर्जी विद मेडिकल साइंस) पुस्तक को अवश्य पढ़ें एवं अपने डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, प्रबुद्ध मित्रों, आपसे जुड़े देश-दुनिया के अपने गणमान्य मित्रों को उक्त पुस्तक पढ़ने के लिए प्रेरित करें। इससे योग का सत्य वैश्विक पटल पर स्थापित होगा और अज्ञान, आग्रह, स्वार्थ व अहंकार की दीवारें ध्वस्त होंगी और हमारे सांस्कृतिक वैदिक ज्ञान की विश्वविजयी यात्रा पूर्ण होगी। एक बार पुनः अपने समस्त उपासकों, श्रद्धालुओं, प्रशंसकों व बुद्धिजीवी मित्रों से विनम्र आग्रह है कि वे योग के वैज्ञानिक प्रमाण के लिए 'विज्ञान की कसौटी पर योग' (हिन्दी व अंग्रेजी) अवश्य पढ़ें व अन्यों को पढ़ने के लिए प्रेरित करें। जितने भी राष्ट्रवादी, अध्यात्मवादी, मानवतावादी व वैज्ञानिक सोच के व्यक्ति हैं वे जब 'विज्ञान की कसौटी पर योग' पुस्तक को पढ़ेंगे तो विश्व की चिकित्सा व्यवस्था में एक सम्पूर्ण क्रान्ति का सूत्रपात अवश्य होगा।

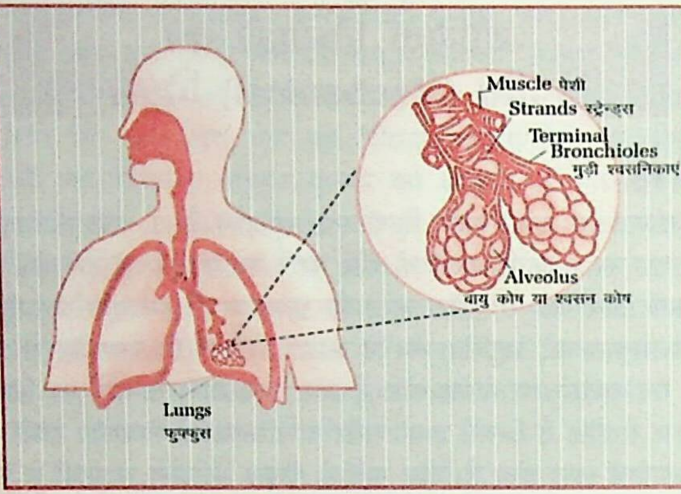
यौगिक क्रियाओं का यांत्रिकीय (Mechanical) विश्लेषण

श्वसन क्रिया

श्वसन क्रिया हमारे शरीर में दो स्तर पर होती है। 1. रक्त कोशिकाओं के स्तर पर, 2. ऊतक कोशिकाओं के स्तर पर । श्वास लेने पर हम दोनों ही स्तर की श्वसन क्रिया को सम्पादित करते हैं। प्राणायाम में हम एक क्रमबद्ध तरीके से श्वास-प्रश्वास को संतुलित रूप में सम्पादित करते हैं। प्राणायाम से मस्तिष्क व शरीर का रक्तसंचरण बेहतर होता है तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का क्रियान्वयन सुचारु रूप से होता है जिससे हमारे शरीर व मस्तिष्क के विजातीय द्रव्यों का क्षय होने से आरोग्य प्राप्त होता है। तीव्र गति से दौड़ना या अन्य व्यायामों से भी उक्त लाभ प्राप्त होते हैं क्योंकि वे सब क्रियायें भी अपचय प्रधान क्रियाएं (catabolic processes) होती हैं। उन सभी क्रियाओं के द्वारा अतिरिक्त वसा के पाचन होने से तथा रक्त परिसंचरण के बढ़ने से स्वास्थ्य लाभ होता है। परन्तु प्राणायाम न केवल रक्त परिसंचरण बढ़ाता है अपितु अन्त:स्रावी ग्रन्थियों को सुचारु रूप से कार्य करने में मदद करता है। यह सिद्ध हो चुका है कि अधिकतर बीमारियां-जैसे मधुमेह, थायरॉयड रोग, उच्च रक्तचाप, रक्त परिसंचरण में बाधा, मोटापा, मस्तिष्कगत बीमारियां-जैसे अवसाद, भ्रम, कम्पवात इत्यादि सभी व्याधियां अन्त:स्रावी ग्रन्थियों के अनियंत्रित रूप से कार्य करने के कारण होती हैं। अत: यदि प्राणायाम द्वारा इन ग्रन्थियों से सुचारु रूप से कार्य कराया जा सकता है तो हम इन सभी व्याधियों से मुक्ति पा सकते हैं।

अपचय तथा उपचय में अंतर

अपचय (Catabolic Processes)	उपचय (Anabolic Processes)
• प्रोटीन, वसा एवं कार्बोधित पदार्थों को बढ़ने से रोकता है • अधिक मात्रा में संचित इन सभी का पाचन करके ऊर्जा उत्पन्न करता है। • रक्त शर्करा, वसाम्ल को बढ़ाता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता हेतु को घटाता है। • रक्त कोशिकाओं तथा यकृत्-एन्जाईम की मात्रा बढ़ाता है। • रक्तचाप को बढ़ाता है।	• प्रोटीन, वसा एवं कार्बोधित पदार्थों को बढ़ाता है। • इनके पाचन को कम करता है। रोग प्रतिरोधक क्षमता के लिए श्वेत रक्तकणिकाओं को बढ़ाता है। • अस्थि की वृद्धि बढ़ाता है। • कोशिका, ग्रन्थि तथा मानसिक कार्यों की वृद्धि करता है। • रक्तचाप को कम करता है, तथा हृदय की संकुचन शक्ति को ठीक करता है।



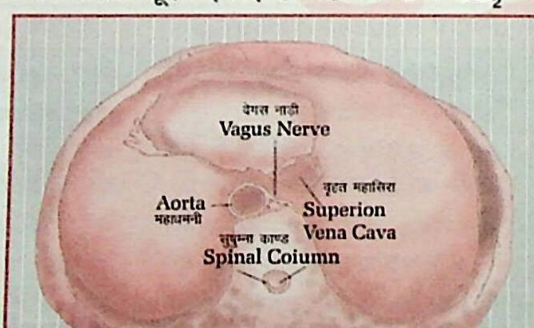
फेंफड़ों में श्वसन कोषों की रचना

श्वसन संस्थान

श्वसन संस्थान का प्रमुख कार्य शरीर की कोशिकाओं के लिए आक्सीजन की पूर्ति करना तथा कार्बन डाइऑक्साइड को निष्कासित करना है, किन्तु यहां यह तथ्य भी अवलोकनीय है कि कार्बन डाइऑक्साइड की एक नियत मात्रा का रक्त में रहना आवश्यक है। श्वसन संस्थान में श्वसन क्रिया हेतु निम्नलिखित शारीरिक अंगों का महत्वपूर्ण योगदान है।

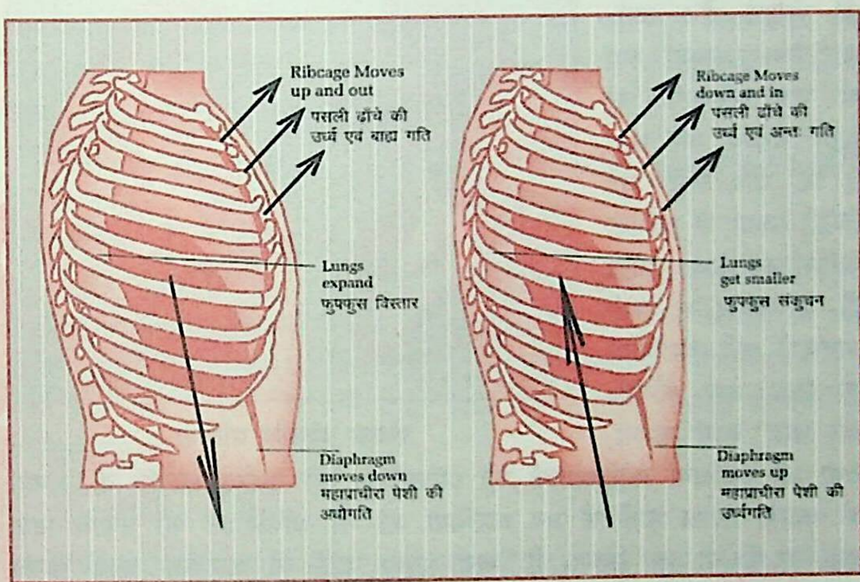
1. मुखगुहा
2. ग्रसनी
3. श्वसन नलिका
4. प्रथम श्वसनिकायें
5. द्वितीय श्वसनिकायें
6. श्वसनकोष

श्वसन कोष श्वसन तंत्र की सबसे सूक्ष्म इकाई है जहां पर O व CO_2 का आवागमन होता है। लगभग 30 करोड़ श्वसन कोष एक फेफड़े में उपस्थित होते हैं। इनका सतही क्षेत्रफल 75-100 वर्ग मीटर होता है। O तो श्वसन कोष से रक्त में आ जाता है तथा CO_2 रक्त से श्वसन कोष में चला जाता है।



महाप्राचीरा पेशी की संरचना

श्वास एवं प्रश्वास के मध्य पसलियां तथा स्टर्नम (sternum) उठ जाते हैं तथा महाप्राचीरा पेशी (diaphragm) नीचे की ओर दब जाती है जिससे वक्ष की लम्बाई बढ़ जाती है तथा फेफड़ों में दबाव कम हो जाता है, और ऑक्सीजन फेफड़ों के भीतर प्रवेश कर जाती है। श्वसन संस्थान की सबसे प्रमुख इकाई महाप्राचीरा पेशी होती है। यह पेशी उदरगुहा, फुफ्फुस गुहा तथा मेरुदण्ड को आपस में जोड़ने का कार्य करती है। हमारे द्वारा प्रतिपादित यौगिक क्रियाओं के द्वारा इसी महाप्राचीरा पेशी में संकुचन एवं प्रसारण की क्रिया होती है। प्राणायाम में हमें धीमी तथा गहरी सांस लेने हेतु दिशा-निर्देश दिया जाता है जिसके कारण ही महाप्राचीरा पेशी नीचे खिंच जाती है तथा प्राण वायु का संचरण अधिकतम होता है।



श्वसन के दौरान, छाती की विभिन्न मांसपेशियों की स्थिति

ऑक्सीजन शरीर कोशिकाओं के कार्यरत होने हेतु परम आवश्यक तत्व है। जिस क्रिया से ऑक्सीजन की मात्रा फेफड़ों में बढ़ जाती है तथा कार्बन डाइऑक्साइड का निष्कासन फेफड़ों से अधिक होता है, उस क्रिया को प्राणायाम कहा जाता है। प्राणायाम द्वारा रक्त में ऑक्सीजन का स्तर प्रचुर मात्रा में बढ़ने के साथ-साथ कार्बन डाइऑक्साइड के निष्कासन का स्तर भी बढ़ जाता है। यहां अब यह जानना बहुत आवश्यक है कि ऑक्सीजन का कोशिकाओं पर किस-किस रूप में क्रियात्मक प्रभाव पड़ता है।

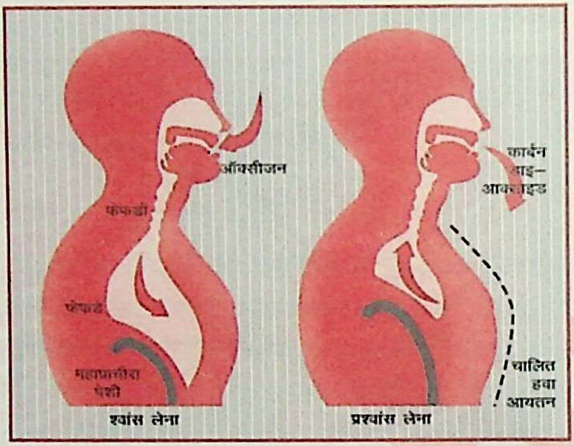
प्राणायाम के क्रियात्मक प्रभाव

प्राणायाम द्वारा निम्न क्रियात्मक प्रभाव शरीर में देखे जा सकते हैं।

1. दहन हेतु ऑक्सीजन की अधिक मात्रा में उपलब्धता
2. लसीका तंत्र (Lymphatic system) से सम्बन्धित लाभ
3. मस्तिष्क एवं नाड़ी संस्थान (Brain & Nervous system) सम्बन्धित लाभ

ऑक्सीजन का सम्यक् दहन

ऑक्सीजन के बिना मनुष्य के सभी संस्थान अल्प समय में अव्यवस्थित होकर मृत्यु को प्राप्त हो सकते हैं। अत: यह एक सामान्य रूप से सब संस्थानों के लिए महत्व की बात है कि यदि शरीर को किसी प्रकार से अधिक ऑक्सीजन प्राप्त होगी तो यह शरीर के सभी अवयवों की व्याधियों के लिए एक औषधि की तरह कार्य करेगी,



श्वास प्रश्वास प्रक्रिया

तथा जो व्याधियां कोशिकाओं को ऑक्सीजन की पर्याप्त आपूर्ति के अभाव के कारण उत्पन्न होती हैं उन व्याधियों को भी ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा द्वारा दूर किया जा सकता है। जब मनुष्य कोई भी शारीरिक कार्य सम्पन्न करता है उस समय शरीर में ऑक्सीजन की अधिक आवश्यकता होती है। आधुनिक अनुसंधानों द्वारा यह तथ्य स्थापित किया जा चुका है कि किसी भी प्रकार के शारीरिक कार्य से रक्त में ऑक्सीजन की मांग बढ़ने के साथ-साथ ऑक्सीजन का नियंत्रित दहन भी होता है। आधुनिक अनुसंधान व चिकित्सा परीक्षण यह तथ्य भी स्थापित करते हैं कि शरीर में उत्पन्न होने वाले विभिन्न रोगों का कारण ऑक्सीजन का ठीक प्रकार से दहन न होना है। इसके साथ कुछ समय पूर्व अनुसंधान से यह भी साबित हो चुका है कि अत्यधिक क्षयज रोग तथा इसी प्रकार की अन्य व्याधियों का प्रमुख कारण ऑक्सीजन की अल्प

उपलब्धता भी है।

प्राणायाम के नियमित अभ्यास से ऑक्सीजन की संतुलित आपूर्ति होती है जिससे

अ) ऊर्जा की उत्पत्ति होती है।

ब) ऊर्जा की उत्पत्ति प्रक्रिया में साथ-साथ कोशिकाओं में जल की भी उत्पत्ति होती है जो लसीका (Lymph) के सम्यक् प्रवाह में सहायक होती है।

अ) ऊर्जा उत्पत्ति

शरीर की कोशिकाओं के सभी कार्यों के लिए तथा शरीर का तापमान नियमन हेतु संपूर्ण ऊर्जा ऑक्सीजन तथा शर्करा की रासायनिक प्रक्रिया से उत्पन्न होती है। जब-जब शरीर की सामान्य चयापचय गति बढ़ती है तब-तब उसके साथ ऑक्सीजन की आवश्यकता भी बढ़ती है। उस बढ़ी हुई ऑक्सीजन की आवश्यकता की पूर्ति के लिये श्वास-प्रश्वास की गति में भी वृद्धि हो जाती है जिसे निम्न क्रिया द्वारा समझा जा सकता है।

ईंधन अर्थात् ग्लूकोज +ऑक्सीजन = ऊर्जा+कार्बन डाइऑक्साइड+पानी

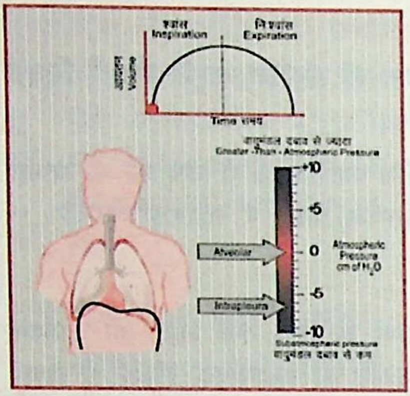
ब) जल उत्पत्ति

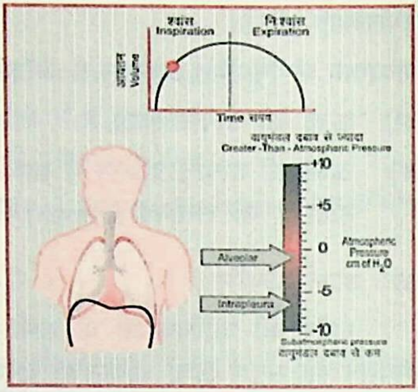
दूसरा महत्वपूर्ण लाभ जो प्राणायाम के अभ्यास द्वारा ऑक्सीजन के दहन से प्राप्त होता है वह लसीका तंत्र से संबंधित है। जैसे-जैसे ऑक्सीजन का अधिक मात्रा में कोशिकाओं द्वारा उपयोग होता है वैसे-वैसे शरीर में जल की मात्रा बढ़ जाती है तथा यह जल हमारे शरीर की आंतरिक सफाई में उपयोगी साबित होता है।

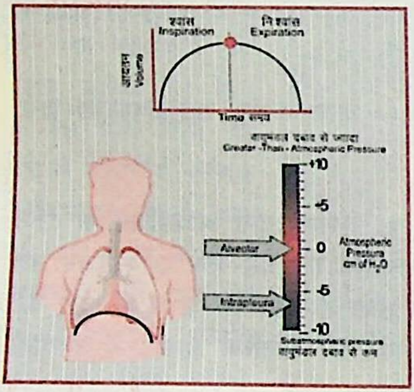
स) रोग प्रतिरोधक क्षमता

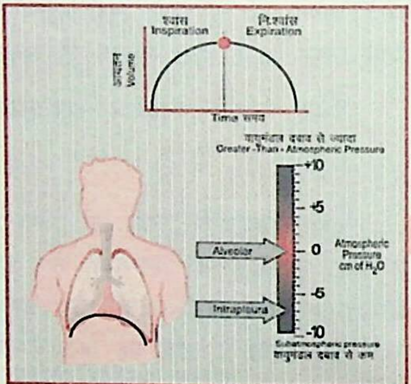
भस्त्रिका प्राणायाम में जब श्वास भरने की क्रिया की जाती है तब रक्तदाब भी बढ़ जाता है। इसी प्रकार जब प्रश्वास की क्रिया की जाती है, तब रक्तदाब कम होता है। यदि नियमित रूप से केवल 5 मिनट यह अभ्यास चलता रहे तो हमें उदरगत सभी अवयवों में, जिसमें अन्तःस्रावी ग्रन्थियां भी हैं, स्पन्दन महसूस होता है। इस स्पन्दन की क्रिया अग्रलिखित चित्रों द्वारा समझी जा सकती है।

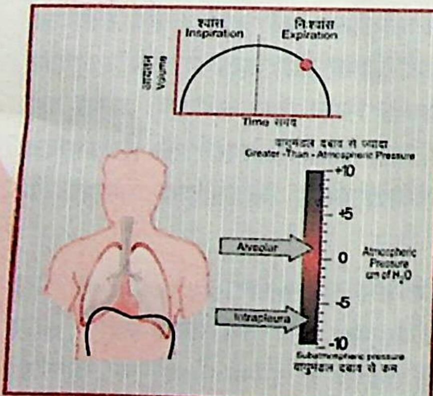
साधारणतः एक सामान्य श्वसनचक्र में हम 500 ml (Tidal Volume) वायु का उपयोग करते हैं। जबकि अध्ययनों के अनुसार यदि हम गहरा श्वास भरते हैं तो यह मात्रा 4 हजार 500 ml तक हो सकती है बल्कि किसी के फेफड़ों

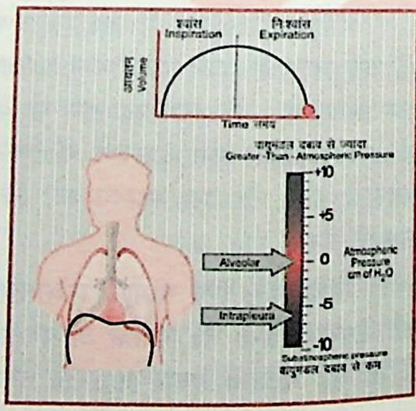

श्वास Inspiration
नि:श्वास Expiration
आयतन Volume
Time समय
वायुमंडल दबाव से ज्यादा
Greater -Than - Atmospheric Pressure
+10
+5
0
-5
-10
Alveolar
Intrapleura
Atmospheric Pressure cm of H_2O
Subatmospheric pressure
वायुमंडल दबाव से कम

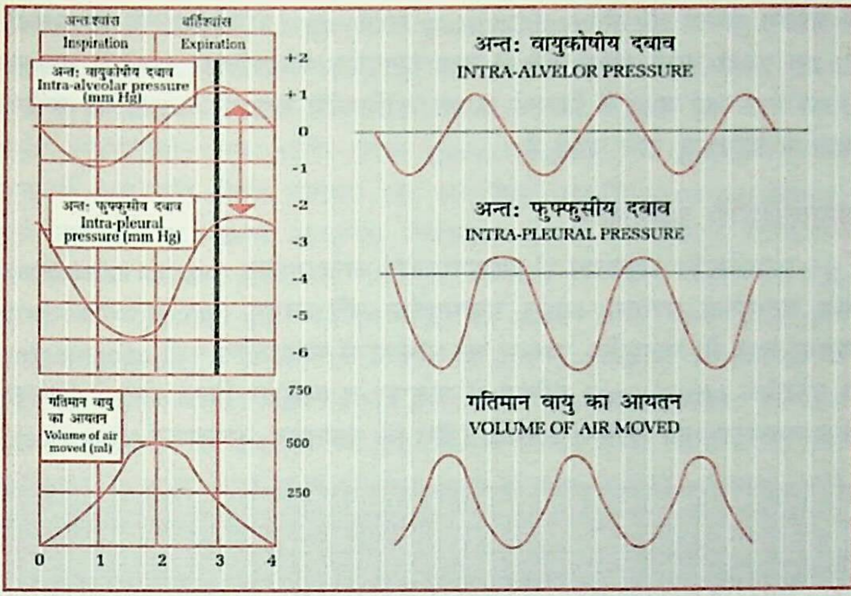

श्वास Inspiration
नि:श्वास Expiration
आयतन Volume
Time समय
वायुमंडल दबाव से ज्यादा
Greater -Than - Atmospheric Pressure
+10
+5
0
-5
-10
Alveolar
Intrapleura
Atmospheric Pressure cm of H_2O
Subatmospheric pressure
वायुमंडल दबाव से कम


श्वास Inspiration
नि:श्वास Expiration
आयतन Volume
Time समय
वायुमंडल दबाव से ज्यादा
Greater -Than - Atmospheric Pressure
+10
+5
0
-5
-10
Alveolar
Intrapleura
Atmospheric Pressure cm of H_2O
Subatmospheric pressure
वायुमंडल दबाव से कम


श्वास Inspiration
नि:श्वास Expiration
आयतन Volume
Time समय
वायुमंडल दबाव से ज्यादा
Greater -Than - Atmospheric Pressure
+10
+5
0
-5
-10
Alveolar
Intrapleura
Atmospheric Pressure cm of H_2O
Subatmospheric pressure
वायुमंडल दबाव से कम

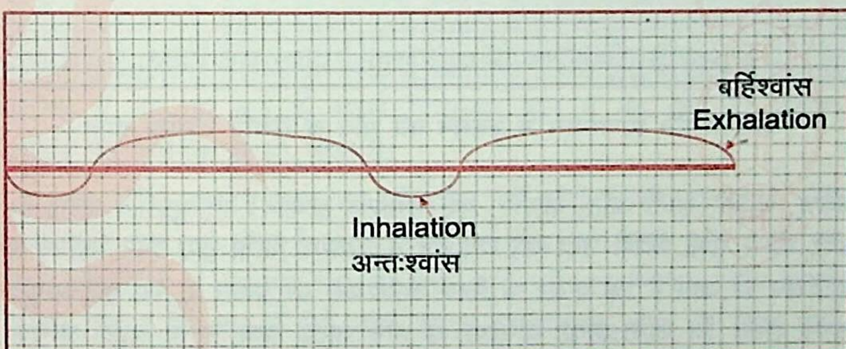

श्वास Inspiration
नि:श्वास Expiration
आयतन Volume
Time समय
वायुमंडल दबाव से ज्यादा
Greater -Than - Atmospheric Pressure
+10
+5
0
-5
-10
Alveolar
Intrapleura
Atmospheric Pressure cm of H_2O
Subatmospheric pressure
वायुमंडल दबाव से कम


श्वास Inspiration
नि:श्वास Expiration
आयतन Volume
Time समय
वायुमंडल दबाव से ज्यादा
Greater -Than - Atmospheric Pressure
+10
+5
0
-5
-10
Alveolar
Intrapleura
Atmospheric Pressure cm of H_2O
Subatmospheric pressure
वायुमंडल दबाव से कम



दबाव एवं वायु आयतन-15 श्वसन चक्र प्रति मिनट

तीव्र भस्त्रिका प्राणायाम के दौरान दबाव आयतन कम्पन की स्थिति



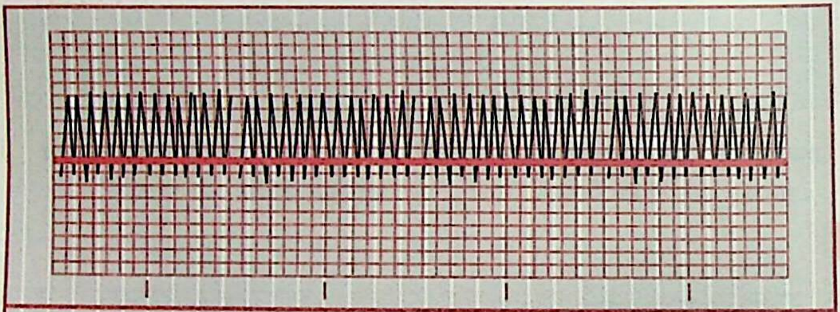
सामान्य श्वसन के दौरान दबाव आयतन कम्पन की स्थिति

इस अवस्था में अंतःश्वास 1 सेकन्ड एवं बहिःश्वास 3 सेकन्ड का होता है ऐसे में शरीरस्थ अंगों एवं ग्रन्थियों में कम्पन की स्थिति उत्पन्न नहीं हो पाती है।

में पर्याप्त क्षमता हो तो Vital Capacity 8000 ml (8 लीटर) भी हो सकती है। इस प्रकार गहरा श्वास लेने से तथा बलपूर्वक श्वास बाहर करने से रक्त में O का स्तर बढ़ जाता है जिसके कारण कोशिकीय स्तर पर ऊतकों को पर्याप्त मात्रा में प्राणवायु प्राप्त होती है।

कपालभाति प्राणायाम

कपालभाति प्राणायाम में सामान्यरूपेण अन्तःश्वसन (normal inhalation) तथा यत्नपूर्वक प्रश्वास अर्थात् प्रयासपूर्वक बहिःश्वसन (forced exhalation) कराया जाता है। बलपूर्वक प्रश्वास की प्रकिया में महाप्राचीरा पेशी (diaphragm) व औदरिक (abdominal) पेशियों में संकुचन व अकुंचन क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप उदरस्थ विभिन्न अवयवों (जैसे कि आमाशय, अग्न्याशय (pancreas),



कपालभाति प्राणायाम 60 श्वसन (स्ट्रोक) प्रति मिनट

कपालभाति प्राणायाम में श्वसन की गति व स्थिति दर्शाता ग्राफ

यकृत्, प्लीहा, छोटी आँत, कोलन, गुर्दे, गर्भाशय इत्यादि) पर सुप्रभाव पड़ता है। उदर के ये सभी हिस्से उदर की संकुचन व प्रसारण क्रिया द्वारा इतने सशक्त व कार्यक्षम हो जाते हैं कि शरीर के लिये आवश्यक हर प्रकार के रस की आपूर्ति करने लगते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से होने वाला स्राव न तो बहुत अधिक होता है न बहुत कम। इस प्रकार कपालभाति से महाप्राचीरा पेशी पर पुनः पुनः दबाब डालकर अपनी शरीररूपी मशीन को पूर्ण नीरोग रखने का महान् उपक्रम किया जाता है।

इस उपर्युक्त क्रिया द्वारा शिरागत रक्तदाब (intravenous blood pressure) बढ़ जाता है तथा हृदय में रक्त बलपूर्वक वापस आता है,

परिणामस्वरूप ह्रदय को अभूतपूर्व लाभ होता है। जो गति व स्पन्दन हमें प्राणायाम के द्वारा प्राप्त होता है वही आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में ई.ई.सी.पी.[1] क्रिया द्वारा सम्पादित किया जाता है। ई.ई.सी.पी. क्रिया के दौरान पैर के निचले हिस्से (पिंडलियों) एवं श्रोणि प्रदेश (pelvic region) को cuff द्वारा बांधा जाता है तथा प्रति मिनट लगभग 60 बार बाह्य आघात (external stroke) दिये जाते हैं। यह क्रिया आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में कोरोनरी एञ्जियो-प्लास्टी एवं बाईपास सर्जरी के विकल्प के रूप में मानी जाती है। ई.ई. सी.पी. की गति को ह्रदय स्पन्दन गति के समान किया जाता है जिससे धमनियों (arteries) में स्पन्दन उत्पन्न होता है और उस स्पन्दन से धमनियों में उपस्थित अवरोध दूर हो जाते हैं। इसी प्रक्रिया को हम प्राणायाम द्वारा भी प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि प्राणायाम के द्वारा भी हम स्पन्दन उत्पन्न करते हैं जो रक्त नलिकाओं से अवरोध दूर करने में मदद करते हैं तथा नियमित प्राणायाम करने से वे अवरोध आगे पुन: उत्पन्न नहीं होते।

उपर्युक्त तथ्य को हम एक अन्य उदाहरण से समझाना चाहेंगे। जब कोई सेना की टुकड़ी मार्च पास्ट करती हुई किसी पुल के ऊपर से गुजरती है तो कदम ताल तोड़कर चलने की हिदायत दी जाती है। ताकि पुल की प्राकृतिक फ्रीक्वेन्सी और कदम ताल की फोर्स्ड फ्रीक्वेन्सी के सामंजस्य से जो रेजोनैन्स (शक्ति) उत्पन्न होती है वह शक्ति उस पुल को तोड़ ना डाले। इसी रेजोनैन्स के सिद्धांत का लाभ प्राणायाम की फोर्स्ड फ्रीक्वेन्सी व ह्रदय तथा धमनियों की प्राकृतिक फ्रीक्वेन्सी के मिलने से उत्पन्न होने वाले रेजोनैन्स के द्वारा भी हमें प्राप्त होता है जिससे धमनियों में जमे हुए खून के थक्के पिघलकर खून में बह जाते हैं। फलत: धमनियों का अवरोध दूर हो जाता है।

एक अन्य उदाहरण। जब बस गतिशील नहीं होती अर्थात् खड़ी हुई होती है पर इंजन चल रहा होता है तो बस की प्राकृतिक फ्रीक्वेन्सी और इंजन की फोर्स्ड फ्रीक्वेन्सी के लयबद्ध होने पर यदा-कदा पूरी बस एकदम काँप उठती है। उस कम्पन को बस में बैठे यात्री सहज ही अनुभव करते हैं। जिस तरह बस में यात्री बैठे होते हैं ठीक उसी तरह यदि धमनियों में यत्र-तत्र खून के थक्के जमे हुए हों तो प्राणायाम से उत्पन्न रेजोनैन्स से वे थक्के पिघलकर खून में बहने के लिये मजबूर हो जाते हैं। परिणामस्वरूप धमनियों का अवरोध हट जाता है और बाइपास ऑप्रेशन इत्यादि की आवश्यकता नहीं पड़ती।

---

1. Enhanced External Counter Pulsation

प्राण (जीवनीय शक्ति)

जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में अनेक शक्ति-क्षेत्र तथा बल होते हैं उसी प्रकार हमारे शरीर में भी प्राणशक्ति होती है जो बाह्य क्षेत्र द्वारा हमारे श्वास-प्रश्वास से जुड़ी होती है। यदि किसी भी प्रकार का असन्तुलन या रिसाव इस प्राणशक्ति का होता है तो व्याधियां उत्पन्न होती हैं। अतः प्राण व उदान के समन्वय से हम प्राणशक्ति का सन्तुलन बनाये रख सकते हैं। इसलिये श्वास व प्रश्वास द्वारा एक अर्थ में हमें चैतन्य की प्राप्ति होती है।

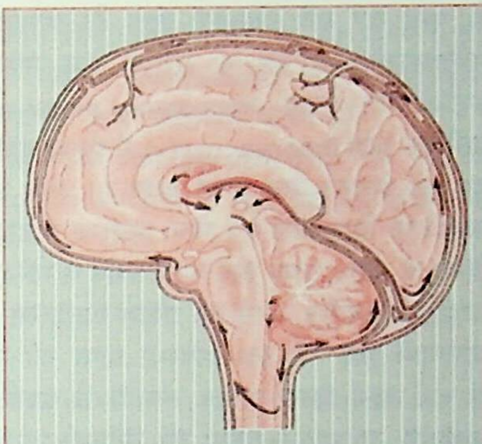
श्वसन एवं मस्तिष्क

श्वसन क्रिया हेतु नासाछिद्र अत्यंत वांछनीय हैं। इन्हीं नासाछिद्रों द्वारा श्वसन क्रिया से ग्रहण की गई प्राणवायु को शोधित एवं तापमान को नियंत्रित करने का कार्य होता है। नासाछिद्र जो कपाल का एक भाग है मस्तिष्क को एक ऐसी संरचना प्रदान करता है जिससे मस्तिष्क में उपस्थित किसी भी अवयव का स्राव होने की संभावना नगण्य होती है। मस्तिष्क द्वारा ही श्वसन क्रिया हेतु दिशानिर्देश दिये जाते हैं तथा नियंत्रण किया जाता है परंतु यह तथ्य बहुत कम लोग जानते हैं कि मस्तिष्क द्वारा भी श्वसन क्रिया की जाती है और इसी श्वसन क्रिया के द्वारा ही मस्तिष्क कार्यशील हो पाता है। मस्तिष्क द्वारा की जाने वाली श्वसन क्रिया के द्वारा ही सूर्य की किरणों से प्राप्त ऊर्जा तथा प्राणवायु का संचरण मानव शरीर में संभव हो पाता है। पूर्वी देशों के दर्शन तथा आयुर्वेद मनीषियों द्वारा यह माना गया है कि मस्तिष्क भी श्वसनक्रिया व स्पन्दन आदि क्रियायें करता है।

मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव (Cerebrospinal Fluid)

मस्तिष्क में उपस्थित मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव (cerebrospinal fluid) कोशिका स्तर पर संदेशवाहक न्यूरोपेप्टाइड्स (messenger neuropeptides) का नियंत्रण करता है जो विभिन्न शारीरिक क्रियाओं में साम्य स्थापित करने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव (cerebrospinal fluid) मस्तिष्क तथा सुषुम्णा काण्ड के मिलने के स्थान पर संचरित होता है। इसके संचरण में प्रयुक्त होने वाली यांत्रिकी में स्थित दो पम्प सुषुम्णा काण्ड में कार्य करते हैं। सतह पर क्रेनियम पम्प (cranium pump) स्थित होता है तथा तल पर सेक्रम पम्प (sacrum pump) स्थित होता है। प्राणायाम की क्रिया में जब श्वास भीतर तथा बाहर किया जाता है, उस समय महाप्राचीरा पेशी में संकुचन व अकुंचन के फलस्वरूप मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव

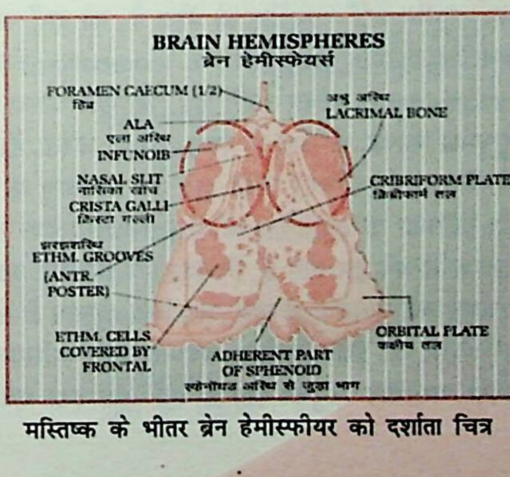
(CSF) को नियंत्रित करने वाले दोनों पम्प क्रियाशील हो जाते हैं तथा इसी संकुचन के कारण सेक्रल पम्प सतह पर मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव को मस्तिष्क में संचरित करता है एवं श्वास छोड़ते समय मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव सुषुम्णा काण्ड में संचरित होता है।



प्राणायाम की प्रक्रिया के दौरान मस्तिष्क एवं सुषुम्ना काण्ड में मस्तिष्क तंत्रिकीय द्रव्य की गति नियमन

न्यूरोपेप्टाइड्स (neuropeptides)

मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव में संदेशवाहक का कार्य करने वाले अणुओं को न्यूरोपेप्टाइड्स कहते हैं। न्यूरोपेप्टाइड्स तंत्रिका तंत्र में समस्त शारीरिक क्रियाओं को संचालित करने वाली सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं, जिससे मस्तिष्क व अन्य अंगों में साम्य बनाये रखने का कार्य कोशिकीय स्तर पर इनके द्वारा सम्पादित किया जाता है। विभिन्न अनुसंधानों द्वारा अभी तक कुल 100 से अधिक न्यूरोपेप्टाइड्स ज्ञात हो चुके हैं। न्यूरोपेप्टाइड्स न केवल शरीर की भौतिक क्रियाओं को संपादित करते हैं, बल्कि मानव मस्तिष्क में होने वाली भावनात्मक क्रियाओं को भी नियंत्रित करते हैं। शरीर में अनुभव होने वाली पीड़ा को मस्तिष्क में महसूस कराने में इन न्यूरोपेप्टाइड्स का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान में दी जाने वाली दर्दनिवारक औषधियां इन न्यूरोपेप्टाइड्स पर स्थित ग्राहक स्थलों पर संयुक्त हो जाती हैं जिसके कारण दर्द अनुभव नहीं हो पाता है। अभी तक दी जाने वाली दर्द निवारक औषधियों में मार्फिन के अणु इन न्यूरोपेप्टाइड्स के ग्राहक स्थलों पर सर्वाधिक जुड़ने की क्षमता रखते हैं, जिसके कारण यह आज भी सर्वाधिक प्रचलित दर्दनिवारक दवा के रूप में प्रयुक्त किया जाता



मस्तिष्क के भीतर ब्रेन हेमीस्फीयर को दर्शाता चित्र

है, परंतु वह सब अस्थायी होता है। प्राणायाम में की जाने वाली यह क्रिया मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव के संचरण द्वारा मस्तिष्क व सुषुम्णा काण्ड के मध्य इन्ट्राक्रेनियल दबाव (intra-cranial pressure) के उत्पन्न होने के फलस्वरूप हरमैटिक कोष (hermetic cavity) में स्पन्दन होने के कारण होती है। मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव का संचरण जब अपने चरम पर होता है उस अवस्था में हमारा मस्तिष्क अत्यधिक क्रियाशील एवं चेतन अवस्था में होता है। आधुनिक अनुसंधानों द्वारा इस क्रिया के दौरान उत्पन्न होने वाली ध्वनि व मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव में उत्पन्न होने वाली तरंगों को स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। अनुलोम-विलोम व भ्रामरी प्राणायाम द्वारा भी यह अवस्था प्राप्त की जाती है जिसमें मस्तिष्क के दाएँ व बाएँ दोनों हिस्से समान रूप से क्रियाशील किए जाते हैं। अनुलोम-विलोम प्राणायाम से प्राप्त अवस्था की यांत्रिकी को निम्न प्रकार समझा जा सकता है।

तीसरा नेत्र (The Third Eye)

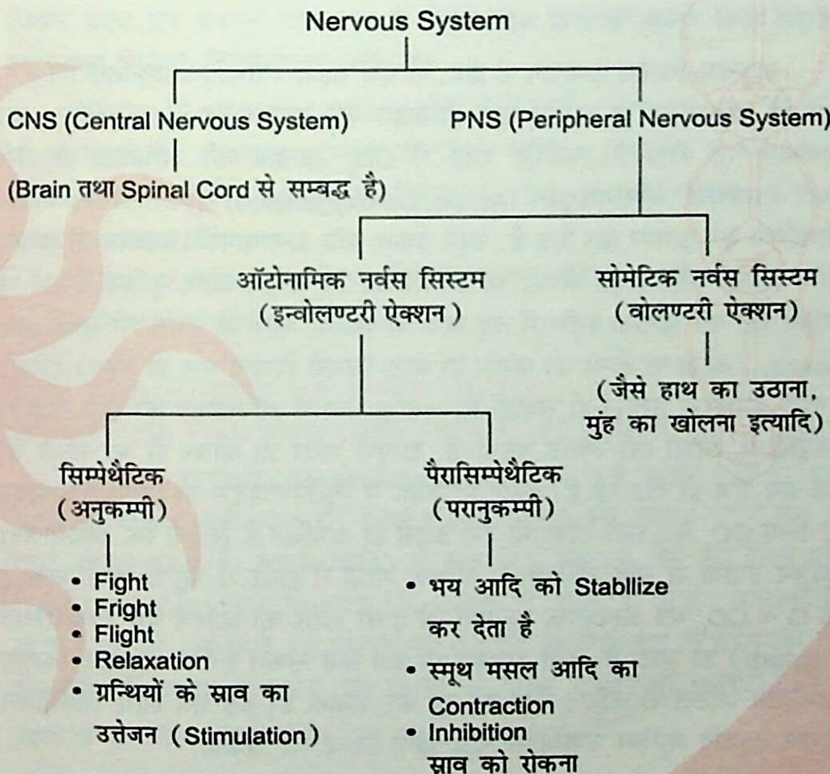
वर्तमान में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान द्वारा पूर्व में योगविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत ''नाडी द्वारा मस्तिष्क के दोनों भागों का प्रयोग'' को अत्यंत महत्व प्रदान किया जा रहा है। योगविज्ञान में नाडी को मानवशरीर में प्रवाहित होने वाली भौतिक, मानसिक व आध्यात्मिक ऊर्जा का माध्यम बताया गया है। शरीर में 72 हजार से भी अधिक नाडियां स्थित हैं, किन्तु इन सभी नाडियों में इडा, पिंगला व सुषुम्णा नाडी सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। सामान्य अवस्था में केवल इडा अथवा पिंगला नाडियां ही सक्रिय रहती हैं, सुषुम्णा नाडी सामान्यतया निष्क्रिय ही रहती है। श्वसन क्रिया के दौरान शरीर में प्रविष्ट होने वाली प्राणवायु या तो इडा नाडी के मध्य से अथवा पिंगला नाडी के मध्य से यात्रा करती है। इडा (चन्द्रस्वर) नाडी का आरम्भ बाएँ नासाछिद्र से होता है, जो दाएँ नासाछिद्र से मिलता है। इस प्रकार प्रवाहित प्राणवायु लघु मस्तिष्क (cerebellum) व मेड्युला ऑब्लोंगेटा (medulla oblongata) में प्रविष्ट होती हुई, सुषुम्णा काण्ड के बाएँ तरफ यात्रा करते हुए सुषुम्णा काण्ड के अंत में यात्रा समाप्त करती है। इसी प्रकार ठीक विपरीत दिशा में पिंगला (सूर्यस्वर) नाडी द्वारा भी प्राणवायु के संचरण का कार्य संपादित होता है। नासिका के आन्तरिक कोषों में स्थित प्रत्येक नासिका छिद्र में कार्टिलेज नामक ऊतक से बने द्वार होते हैं, जिनका पूर्ण नियंत्रण आज्ञाचक्र के द्वारा संपादित होता है। श्वसन की अवस्था में जब एक छिद्र खुलता है तो उसी समय दूसरे नासिका छिद्र से श्वास का प्रवेश पूर्णतया बंद रहता है। नासिका के ऊपरीभाग (छत) पर, जहां दोनों नासाछिद्र संयुक्त होते हैं एवं जहां इडा एवं पिंगला नाडी का उद्गम स्थान

होता है, वहां शरीर का प्रमुख जीवनीय बिन्दु (vital spot) होता है। यहीं पर इडा (parasympathetic परानुकम्पी) एवं पिंगला (sympathetic अनुकम्पी) संयुक्त होकर एक प्लेक्सस (plexus) बनाती है, जिसे आज्ञाचक्र कहते हैं।

हमारे जीवनसाधना के शास्त्रों में इसे तीसरे नेत्र (the third eye) की संज्ञा दी गयी है। जो साधक इस बिन्दु को सक्रिय कर लेता है, वह अद्वितीय शक्ति को धारण कर लेता है।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम का प्रभाव (Effect of Alternate Nostril Breathing)

हम देखते हैं कि मस्तिष्क की प्रभाविता (cerebral dominance) का तारतम्य प्रत्येक नासाछिद्र के श्वसन चक्र पर भी निर्भर करता है। आधुनिक विज्ञान के अनुसार यह तारतम्य सिम्पथैटिक एवं पैरासिम्पथैटिक तंत्रिका तंत्र (इन



शब्दों का तात्पर्यार्थ समझने के लिए निम्नलिखित डायग्राम को देखें) की क्रिया द्वारा नियंत्रित होता है। यौगिक विज्ञान के सिद्धान्त ''नाडी द्वारा मस्तिष्क के दोनों भागों का प्रयोग'' के आधार पर यह तारतम्य इडा एवं पिंगला नाडी द्वारा नियंत्रित होता है। अनुलोम-विलोम प्राणायाम से दोनों भागों (brain hemispheres) की क्रिया में संपूर्ण सामञ्जस्य स्थापित हो जाता है। इस अवस्था में दोनों नासाछिद्रों में से प्रविष्ट होने वाली प्राणवायु के हेतु से संतुलन स्थापित हो जाता है। हम देखते हैं कि मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव (cerebrospinal fluid) का संचरण अन्त:श्वास (inhalation) की स्थिति में सुषुम्णा काण्ड (spine) से मस्तिष्क (brain) की तरफ होता है जबकि बहि:श्वास (exhalation) की स्थिति में मस्तिष्क से सुषुम्णा काण्ड की तरफ होता है।

प्राणवायु के बहाव में सामञ्जस्य से मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव के संचरण की स्थिति साम्य अवस्था में आ जाती है। इस समता से शरीर की समस्त कोशिकाओं, ऊतकों एवं अंगों को जीवनीय ऊर्जा (Vital Energy) का सही वितरण होता है जिससे सभी सुचारु रूप से कार्य करते हैं।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम के द्वारा, जो एक सहज-स्वाभाविक प्राकृतिक क्रिया है, रक्त में ऑक्सीजन व कार्बन डाइऑक्साइड की सान्द्रता (Concentration) का नियन्त्रण भी होता है। क्योंकि रक्त में CO_2 सान्द्रता की अधिकता से जैसे रक्त अत्यधिक अम्लयनयुक्त (Acidic, De-oxygenated) होकर अनेक घातक बीमारियों को उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार यदि प्राणायामरूप माध्यम के बजाय अन्य किन्हीं ऑक्सीजन चैम्बर या ऑक्सीजन सिलिण्डर आदि कृत्रिम उपायों से ऑक्सीजन की सान्द्रता शरीर में बढ़ जाये या बढा दी जाये तो उससे भी lenticular opacity (आंख के लैन्स का कठोर हो जाना जिससे दिखना बन्द हो जाना) इत्यादि अनेक बीमारियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। जबकि रक्त में ऑक्सीजन की सही मात्रा में आपूर्ति से आँखों की ज्योति बढती है, सम्पूर्ण शरीर ही जीवन से भर उठता है, यह हम रोज ही देख रहे हैं। हमारे मस्तिष्क में न्यूरोपेप्टाइड्स के नियमित उत्पादन के लिए CO_2 की सही मात्रा भी हमें उतनी ही अपेक्षित है जितनी कि ऑक्सीजन। कृत्रिम उपायों से यदि ऑक्सीजन अधिक मात्रा में शरीर में पहुंचा दिया जाता है तो O व CO_2 का आवश्यक अनुपात जो हमारे शरीर को चाहिये वह अव्यवस्थित (disturb) हो जाता है। इसी आधार पर हम कह सकते हैं कि अनुलोम-विलोम प्राणायाम जटिल से जटिल रोगों को दूर कर सकता है। यह सब लाभ ऑक्सीजन चैम्बर इत्यादि कृत्रिम उपायों से नहीं प्राप्त किया जा सकता।

तनाव की स्थिति (Stressed State)

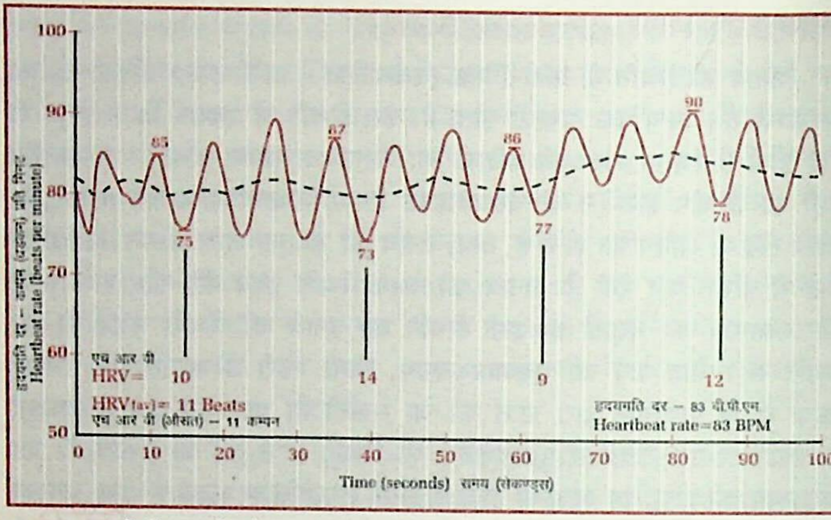
तनाव की स्थिति में ऑटोनॉमिक (स्वचालित = अनैच्छिक) तंत्रिका तंत्र का अनुकम्पी तंत्र अत्यधिक प्रभावी होता है। इस स्थिति में श्वसन क्रिया बहुत ही तीव्र होती है जिससे वक्ष की पेशियों का अत्यधिक प्रयोग होता है। महाप्राचीरा पेशी का उपयोग इसमें न के बराबर होता है। मस्तिष्कतंत्रिकीय द्रव (CSF) का बहाव तीव्र व अनियंत्रित होता है, अत: तनाव की सततता शरीर व मन को विभिन्न रोगों से ग्रसित कर देती है। तनाव की चरम स्थिति हृदय की गति, श्वसन-दर और रक्तचाप को बढ़ाती है। इसी स्थिति को तनाव की स्थिति कहते हैं। इस स्थिति से निजात पाने का एकमात्र उपाय, धीमी गहरी व तारतम्ययुक्त श्वसन क्रिया है जो प्राणायाम द्वारा प्राप्त की जा सकती है। प्राणायाम द्वारा परानुकम्पी क्रियाशीलता एवं ऊतकीय पुनरुद्भवन की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। यह चयापचय की संकुचित अवस्था होती है जिसे एनाबोलिज्म कहते हैं। इस अवस्था में चरमस्थिति रिलेक्सेशन रिस्पान्स (relaxation response-RR) की स्थिति है जिसमें हृदय एवं श्वसन गति न्यून होती है तथा रक्तचाप कम होता है। यही आधारभूत विश्राम-क्रियाशीलता चक्र है।

मस्तिष्क के भीतर दो आवृत्तियां होती हैं जिनको एल्फा (alpha) एवं बीटा (beta) कहते हैं। प्राणायाम अभ्यास के दौरान मस्तिष्क आवृत्ति एल्फा आवृत्ति की सीमा में होती है। प्राणायाम का निरन्तर अभ्यास अन्य हानिकारक तरंगों को प्रभावहीन बनाता है।

एल्फा स्तर मस्तिष्कीय क्रिया रिलेक्सेशन का परिणाम होती है जो स्वास्थ्य की स्थिति लाने में सहायक होती है।

हृदय गति निरन्तरता एवं श्वसन आवृत्ति (Heart Rate Variability (HRV) and Respiration Frequency)

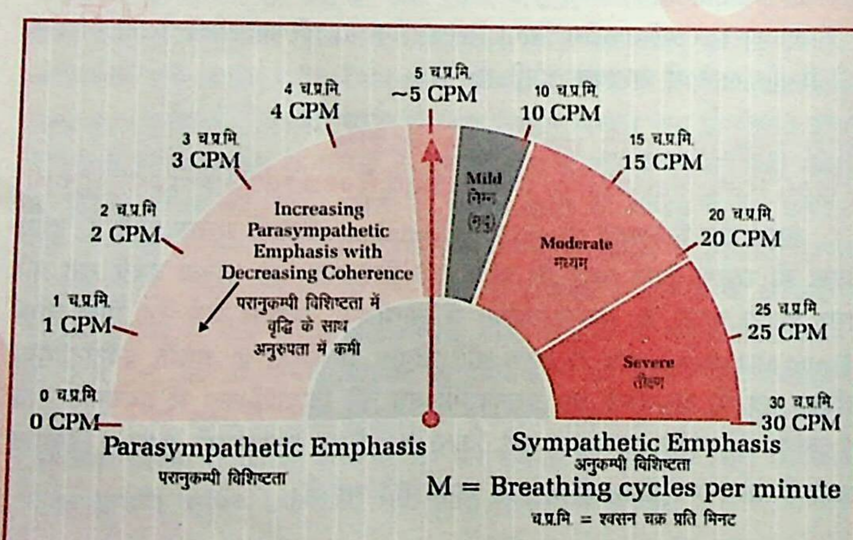
हृदय गति निरन्तरता (Heart Rate Variability) जितनी सुचारु होती है, हृदय उतना ही स्वस्थ माना जाता है। हृदय गति निरन्तरता की न्यूनता हृदय रोग की तरफ इशारा करती है। स्वस्थ व्यक्ति में अत्यधिक व्यायाम जैसे ट्रेड मिल वॉक (Tread Mill Walk) आदि से हृदय गति तीव्रता से बढ़ती है अर्थात् ऑटोनॉमिक तंत्रिका तंत्र के अनुकम्पी एवं परानुकम्पी तंत्र की क्रियाशीलता से हृदयगति तीव्र हो जाती है जबकि प्राणायाम की क्रिया के दौरान एचआरवी (HRV) नियंत्रित रहती है जो निम्न प्रकार चित्र द्वारा स्पष्ट की गई है।



प्राणायाम की क्रिया के दौरान एचआरवी (HRV) की नियंत्रित आवृत्तियों का विवरण

एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि सामान्य परिस्थितियों में एक वयस्क व्यक्ति की विश्राम/सूक्ष्म कार्य/अधिकतम कार्य में श्वसन तारतम्य (breathing rhythm) निम्न प्रकार से होगा।

1. चित्र के अनुसार 'ए' की आवृत्ति में एक चक्र 12 सेकन्ड में तथा 5 चक्र प्रति मिनट होंगे।



2. इस स्थिति में हृदय-फुफ्फुसीय क्षमता (cardiopulmonary efficiency) एवं प्रभाव अधिकतम स्थिति में होंगे।

निष्कर्ष

पूर्वोक्त सभी तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि किस प्रकार प्राणायाम सभी व्याधियों को दूर करने में सहायक है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्राणायाम के विषय में बहुत प्रचार-प्रसार हो रहा है, परंतु इसका पूर्ण लाभ तभी प्राप्त हो सकता है जब इसे उचित विधि व रीति से किया जाए। इसके लिए यह बहुत आवश्यक है कि हमें यह ज्ञात हो कि प्राणायाम करने से हमारे शरीर में क्या क्रियात्मक परिवर्तन होते हैं।

- प्राणायाम सुव्यवस्थित माध्यम से की गयी एक विशिष्ट क्रिया है।
- प्राणायाम एक उपचयात्मक प्रक्रिया है जिससे हमारा रक्त परिसंचरण संतुलित व सुचारु होता है।
- प्राणायाम में श्वास प्रक्रिया में महाप्राचीरा पेशी का सम्बद्ध होना अनिवार्य है। इससे उदरगत अवयवों व आवश्यक रक्तनलिकाओं में कम्पन उत्पन्न होता है।
- कपालभाति तथा भस्त्रिका से न केवल धमनीगत अवरोध दूर होते हैं अपितु इससे उनके पुन: उत्पन्न होने की संभावना भी समाप्त हो जाती है, यदि प्राणायाम नियमित रूप से किया जाए। महाप्राचीरा पेशी के संकुचन व प्रसारण से संवेगात्मक तंत्र को भी लाभ होता है।
- प्राणायाम द्वारा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों का कार्य संतुलित व सुचारु होता है।
- नाडीविज्ञान द्वारा हमें अनुलोम-विलोम में एक-एक नासा से श्वास लेने की प्रक्रिया द्वारा मस्तिष्क में संतुलन बनाये रखने में लाभ का पता चलता है।
- श्वासगति, हृदयगति तथा मस्तिष्कतन्त्रिका तंत्र की गति का एक मजबूत बंधन है। श्वास गति कम होने पर इनका बंधन और मजबूत होता है तथा आत्मिक शांति की अनुभूति होती है, उच्च रक्तचाप सामान्य हो जाता है, रक्तगत शर्करा अपने अनुकूल अनुपात में हो जाती है तथा हृदय गति भी सामान्य हो जाती है।
- अत: प्राणायाम ही आध्यात्मिक उन्नति व शारीरिक निरोग का एक सबसे सरल व सस्ता साधन है।

मेडिकल साइंस की नैनोटैक्नोलॉजी 'प्राण'

नैनोटैक्नोलॉजी उन सभी वस्तु एवं उपकरणों के लिए एक मुहावरा समान है जो नैनो स्केल के तहत कार्य करती हैं। यदि मापन की मेट्रिक प्रणाली के दृष्टिकोण से देखा जाए तो नैनो का मतलब है मीटर के माप में 100 करोड़वां हिस्सा (10^{-9})। नैनो के संदर्भ में नैनो मैटीरियल (वस्तु), नैनो इलैक्ट्रॉनिक्स, नैनो के उपकरण तथा नैनो पाउडर आते हैं। इसका मुख्य अर्थ होता है कि ऐसी सामग्री की गतिविधि जो नैनो मीटर में मापी जा सकती है।

अगर आकार के दृष्टिकोण से देखा जाए तो मानव शरीर में जो लाल रक्त कोशिकाएं होती हैं उनकी लम्बाई 2000 नैनो मीटर है, जो वास्तव में नैनो स्केल के माप से बाहर है। उसी प्रकार ऑक्सीजन है जो मानव ढांचे में वायु का एक अंग है और शरीर की रासायनिक क्रियाओं तथा मेटाबोलिज्म की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेता है। प्राणायाम जैसे व्यायाम के द्वारा हमने ऑक्सीजन को नैनो लेवल पर शरीर की तमाम प्रक्रियाओं के लिए उपयोग किया। नैनोटैक्नोलॉजी अत्यधिक प्रभावशाली है एवं इसका उपयोग कृत्रिम हड्डियों के निर्माण में होता है जो स्टील जैसी मजबूत एवं प्राकृतिक हड्डियों से अत्यन्त हल्की होती हैं। उसी प्रकार अगर ऑक्सीजन एक विशेष तरीके से विभिन्न प्राणायाम, व्यायाम के द्वारा ग्रहण एवं उत्सर्जित किया जाए तो यह कई गम्भीर बीमारियों जैसे हृदय रोग, एन्जाइना, गठिया रोग तथा कई अन्य बीमारियों में भी सहायक सिद्ध हुआ है। साथ ही साथ यह सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है।

सम्पूर्ण ब्रह्मांड का निर्माण पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल व आकाश तत्त्वों के संघात से हुआ और इन पाँच तत्त्वों के मूल में भी एक तत्त्व ऐसा है जो सर्वत्र विद्यमान है और वह है प्राण।

वैज्ञानिकों ने स्थावर सृष्टि में नाइट्रोजन का आविष्कार करके हरित क्रांति को जन्म दे दिया। विज्ञान के क्षेत्र में हाइड्रोजन एवं कार्बन आदि को लेकर बम से लेकर अन्य अविष्कारों का दौर चल रहा है। चिकित्सा विज्ञान ने आपातकालीन चिकित्सा के लिए ऑक्सीजन का अब तक उपयोग किया है और मुझे लगता है अब शीघ्र ही वह दिन दूर नहीं जब समस्त रोगों के उपचार के लिए प्राणतत्त्व का उपयोग होगा। शरीर की उत्पत्ति के मूलतत्त्व शुक्र व रज में ऑक्सीजन एक प्रमुख तत्त्व है जिससे शुक्राणु में सक्रियता (motility) रहती है तथा अण्डे में पोषण होता है। उपनिषदों में शरीर को अन्नमय कहा गया है। अन्न अर्थात् हमारा आहार, जिसके मूलतत्त्वों में ऑक्सीजन की ही मुख्य सहभागिता है। हम जो दाल, रोटी, सब्जी, दूध व फल आदि के रूप में शरीर को पोषण देने वाले तत्त्व लेते हैं, उन्हीं के समान बल्कि उनसे से भी

अधिक एक मुख्य तत्त्व है ऑक्सीजन। शरीर को पोषण देने वाले आहार के मुख्य तत्त्व हैं कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, फैट, मिनरल्स एवं विटामिन, आदि, यद्यपि ब्रह्माण्ड एवं पिण्ड में ऑक्सीजन के अतिरिक्त अन्य तत्त्वों का भी समावेश है। हमारी पिण्डगत संरचना में भी ऑक्सीजन के अलावा अन्य तत्त्वों कार्बन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि तत्त्वों का भी समावेश है परन्तु पाँच भूतों व सप्त धातुओं से बने देह में जीवन्तता, चैतन्य केवल मात्र ऑक्सीजन से आती है। शरीर की सबसे छोटी इकाई प्रत्येक कोशिका का न्युक्लिअस, जो कोशिका का दिमाग होता है तथा माइटोकोन्ड्रिया, जहां ऊर्जा की उत्पत्ति होती है, अर्थात् न्युक्लिअस और माइटोकोन्ड्रिया इन दोनों में गति एवं शक्ति का कारण ऑक्सीजन ही है। ऑक्सीजन के द्वारा ही जीवनयज्ञ, जिसे विज्ञान मैटाबालिज़्म कहता है, चल रहा है। शरीर की प्रत्येक कोशिका में ऊर्जा की उत्पत्ति में ऑक्सीजन और शर्करा की ही मुख्य सहभागिता है। कोशिका के भीतर माइटोकोन्ड्रिया में ऊर्जा निर्माण के ठीक से निष्पन्न होने पर शरीर की आन्तरिक व बाह्य क्रियाएं ठीक से निष्पन्न होती हैं। नई कोशिकाओं के निर्माण, क्षय एवं ऊर्जा संचय का मुख्य तत्त्व ऑक्सीजन ही है।

शरीर में विध्वंसात्मक कार्यवाही को रोककर सृजनात्मक व विधेयात्मक शक्तियों को अधिक सबल बनाने में भी ऑक्सीजन की ही मुख्य भूमिका है। शारीरिक श्रम के अभाव, तनाव, विरुद्ध आहार, अनियमित दिनचर्या व असंयमित जीवन के कारण आज व्यक्ति के भीतर एक भयंकर युद्ध चल रहा है। उसी का परिणाम है शरीर के दोषों-वात, पित्त व कफ-का असंतुलन। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार दूसरे शब्दों में कहा जाये तो ''ऐनाबालिज़्म कैटाबालिज़्म'' के ठीक से निष्पन्न न होने पर होम्योस्टैसिस (homeostasis) नहीं हो पा रहा। इन दोषों की विषमता से ही अवसाद और अवसाद के परिणामस्वरूप उच्च रक्तचाप, मधुमेह, मोटापा, हृदय रोग, अपचन, अनिद्रा से लेकर अब तो कैंसर जैसे असाध्य रोग उत्पन्न हो रहे हैं।

दोषों की यह विषमता, अग्नि की विषमता, धातुओं के असंतुलन, मलों के संचय, चित्त एवं आत्मा की अप्रसन्नता हमारी अस्वस्थता का कारण बनी है। इसी से अन्तःस्राव (हार्मोन्स) व रासायनिकों (कैमिकल्स) का संतुलन बिगड़ा है। इसको ठीक करने के लिए हमें विविध दवाओं का आश्रय लेना पड़ा है।

हम अभी तक करोड़ों लोगों पर किए गए अपने प्राणायाम के प्रयोगों के आधार से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि शरीर की प्रत्येक कोशिका अपने आप में हमारा एक प्रतिरूप है अर्थात् शरीर की प्रत्येक कोशिका में हमारा एक हमशक्ल पैदा करने की क्षमता है। इस शरीर की सबसे छोटी इकाई से लेकर शरीर के प्रत्येक अवयव व उस अवयव के द्वारा निष्पन्न होने वाले कार्यों को अर्थात् सम्पूर्ण शरीर को पूरी मात्रा में ऑक्सीजन देकर और शरीर के आन्तरिक

अवयवों को व्यायाम देकर, साथ में एक विधेयात्मक चिन्तन से, हम सम्पूर्ण आरोग्य पा सकते हैं। ऑक्सीजन युक्त रक्त (oxygenated blood), आन्तरिक सूक्ष्म व्यायाम (internal micro exercise) व सकारात्मक जीवन शैली (positive life style)- यही तो हैं प्राणायाम। भस्त्रिका व अनुलोम-विलोम आदि प्राणायाम करके हम शरीर के रक्तकणों को पूरा ऑक्सीजन देते हैं एवं कपालभाति आदि से शरीर के आन्तरिक अवयवों को वैज्ञानिक रीति से गति प्रदान कर शक्ति का संचार करते हैं तथा भ्रामरी व उद्‌गीथ आदि के द्वारा मानसिक स्तर पर श्रद्धा, समर्पण, आस्था, विश्वास व सकारात्मक चिन्तन को जागृत कर हम एक स्वस्थ व चिन्ता-मुक्त जीवन का प्रारम्भ करते हैं।

इस पूरे प्रकल्प में ऑक्सीजन आधार बनता है हमारी सम्पूर्ण प्रक्रिया का। वैसे भी जीवन के प्रारम्भ के साथ ही अनजाने में पैदा होते वक्त ही हमने रोने के बहाने एक लम्बी श्वास ली थी। उसी से हमारी मस्तिष्कीय शक्ति के जागरण से पूरे शरीर की आन्तरिक क्रियाओं की शुरूआत हुई थी, अर्थात् बचपन में माता, पिता ने रुलाकर हमसे प्राणायाम करवाया था। प्राणायाम के द्वारा प्रविष्ट ऑक्सीजन तथा प्राणायाम के द्वारा प्रदत्त वैज्ञानिक सम्पूर्ण आन्तरिक व्यायाम व विश्रान्ति हमारे शरीर की सैल्फ हीलिंग (self healing) करते हैं। प्राणायाम आत्म औषधि (self medicine) व आत्म चिकित्सा (self treatment) है। यहां तक कि प्राणायाम से गांठ व मेरुदण्ड के ऑपरेशन्स से भी हमें किसी हद तक मुक्ति मिल जाती है। हृदय की शल्य क्रिया से भी हम बच जाते हैं। तब लगता है प्राणायाम सैल्फ ऑपरेशन की एक अनूठी विधा है। प्राणायाम से जब शरीर के एनाबॉलिज़्म का स्तर सदैव उन्नत स्तर का एवं कैटाबोलिज़्म का स्तर निम्न होता है तो एजिंग प्रोसेस (aging process) भी कम हो जाता है अर्थात् हम असामयिक बुढ़ापे से बचकर दीर्घायु प्राप्त करते हैं। प्राणायाम के प्रयोगों के वैज्ञानिक परिणामों के प्रमाणों के साथ हम यह कह सकते हैं कि प्राण अर्थात् ऑक्सीजन नामक तत्व जब हमारे शरीर में कुछ निश्चित विधियों द्वारा एक सुनिश्चित समय में सुनिश्चित मात्रा व सही वैचारिक दिशा के साथ प्रविष्ट कराया जाता है तो शरीर में स्वतः सकारात्मक परिवर्तन घटित होने लगते हैं और प्राण एक सम्पूर्ण औषध की तरह कार्य करने लगता है। यही योग विद्या का मूलमंत्र है। यही आरोग्य का मूल मंत्र है और यही एक स्वस्थ, समृद्ध व संवेदनशील व्यक्ति व राष्ट्र निर्माण का आधार है। मूलतः वेदों में भी प्राणविद्या का स्वरूप इसी प्रकार मिलता है।

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्‌रपः।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे। **(ऋग्वेद 10.137.3)**

अर्थात् प्राण भेषज है, अर्थात् ऑक्सीजन एक मेडिसिन है। यह विविध रूप में भीतर प्रवहमान होता है और यह औषधि ही नहीं यह विश्वभेषज पूर्ण चिकित्सा (complete medicine) है। यह 'प्राण' सृष्टि की समस्त दिव्यताओं

का संवाहक है। प्राण एक आध्यात्मिक चिकित्सा (holistic treatment) है, प्राण का आधार सम्पूर्ण आरोग्य है। भौतिक अर्थात् दैहिक परिवर्तनों के साथ-साथ प्राण के द्वारा शरीर में जो भावनात्मक परिवर्तन आते हैं उनका बहुत ही प्रामाणिक व वैज्ञानिक प्रमाण भी हमारी शास्त्र परम्परा में है।

छान्दोग्य उपनिषद् के ऋषि कहते हैं :

प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता।
प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः प्राणो ब्राह्मणः॥ **(छान्दोग्य 7.15.1)**

दैहिक परिवर्तनों के साथ-साथ योग अर्थात् प्राण के विविध आयामों के द्वारा व्यक्ति के मन में जो भावनात्मक परिवर्तन आते हैं वे भी उतने ही प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक हैं जितने कि भौतिक परिवर्तन।

शारीरिक रोगों के साथ डिप्रेशन (depression) व स्किज़ोफ्रेनिया (schizophrenia) जैसे भयंकर मनोरोगों से आक्रान्त व्यक्ति के लिए योग परम्परा के ऋषि कहते हैं: ऐ मानव! तू घबरा नहीं, हिम्मत न हार, विचलित मत हो, अकेलापन व असुरक्षा के भाव में मत जी, निराश-हताश होने की जरूरत नहीं, तू प्राण की शरण में आ, प्राणायाम कर। यह प्राण पिता है, प्राण माता है, यह भ्राता व स्वसा है। प्राण आचार्य व ब्राह्मण है। यहां प्राणों का रूपकालंकार में वर्णन है अर्थात् प्राणों को पिता आदि के रूप में प्रदर्शित करके उसके भावनात्मक प्रभावों को उपनिषद् के ऋृषि ने इंगित किया है। पिता कहते हैं-पाति रक्षति इति पिता। मान्यं हितं करोति इति माता, अर्थात् जो रक्षा करे वह पिता तथा जो ममता, प्रेम, करुणा, तप, त्याग, धैर्य, साहस, शौर्य व वात्सल्य से हित करे वह माता होती है, भ्राता जो भरण-पोषण करे, आचार्य जो आचरण, वाणी, व्यवहार, स्वभाव व सोच को पवित्र कर दे, तथा जो ब्रह्म के जानने व जनाने में मार्गदर्शक बने वह ब्राह्मण कहलाता है। प्राण माँ बनकर हमारे अन्तर हृदय में प्रविष्ट होता है। उससे दैहिक हृदय स्वस्थ होता है। यह तो हमने वैज्ञानिक प्रमाणों से भी पुष्ट कर दिया है, लेकिन इससे भी बड़ी बात है प्राणायाम के प्रभाव से हमारे हृदय में माँ जैसी ममता, प्रेम, करुणा व संवेदनशीलता आती है। प्राणायाम करते-करते हम अधिक वात्सल्यपूर्ण होने लगते हैं। हमारे भीतर धैर्य, शक्ति, साहस, शौर्य, पराक्रम, तप, त्याग व समर्पण का भाव जागृत होने लगता है। दुनिया के थपेड़े सहता निराश, हताश व्यक्ति अवसादों से दूर हो प्राण के प्रसाद से प्रसन्न, आनन्दित हो झूमने लगता है। प्राण भ्राता बनकर दैहिक व भावनात्मक पोषण देता है। प्राण आचार्य बनकर हमारे आचरण व जीवन को पवित्र कर देता है।

प्राण का सीधा प्रभाव पड़ता है हमारे विचारों पर। प्राणायाम से जब विचार शुद्ध हो जाता है तो व्यक्ति का आहार व व्यवहार शुद्ध व पवित्र हो जाते हैं। अतः प्राणायाम करने वाला व्यक्ति हिंसा, अपराध, चोरी, बेईमानी, दुराचार व व्यभिचार

आदि से मुक्त होकर संयम व सदाचार की राह पर आगे बढ़ता है। वह एक संवेदनशील चरित्रवान् इंसान बन जाता है। आज के युग की यह बहुत बड़ी आवश्यकता है। बढ़ता हुआ अविश्वास, हिंसा, अपराध, भ्रष्टाचार, बेईमानी, यौनाचार, दुराचार का प्राणायाम ही समाधान है और जीवन को पवित्र करता हुआ प्राण हमें परम पवित्र ब्रह्म तक ले जाता है। परम सत्य की, परम आनन्द की अनुभूति कराता है। व्याधि की निवृत्ति कर समाधि अर्थात् स्वरूप उपलब्धि, आत्मबोध, आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, जीवन्मुक्ति, अनासक्ति व स्थितप्रज्ञता की उपलब्धि कराता है प्राणायाम।

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति। (प्रश्नोपनिषद् 2.13)

प्राण के वश में यह त्रिलोकी है। हे लोकाधिपति प्राण! माँ की तरह हम पुत्रों की रक्षा करो, हमें श्री व प्रज्ञा की प्राप्ति कराओ। भौतिक विकास व आध्यात्मिक उन्नति की आधारशिला है प्राणायामपरक जीवनशैली। इक्कीसवीं सदी विज्ञान व अध्यात्म के मिलन की सदी है, और इस सदी का महामंत्र है प्राणायाम। प्राणों की शक्ति का हमारे शास्त्रों में बहुत व्यापक प्रमाण है-

प्राणा वाव वसवः। (छां. उप. 3.16.1)
प्राणा वाव रुद्राः। (छां. उप. 3.16.3)
प्राणा वाव आदित्याः। (छां. उप. 3.16.5)

''प्राण वसु हैं अर्थात् जीवन को बसाने के आधार हैं (**एते हीदं सर्वं वासयन्ति**), प्राण रोगों के लिए रुद्र हैं (**एते हीदं सर्वं रोदयन्ति**) और प्राण जीवन को खंडित होने से बचाने के लिए आदित्य रूप हैं, अथवा प्राण आदित्य हैं क्योंकि ये सबको स्वीकारते हैं (**एते हीदं सर्वमाददते**)।'' प्राणायाम के भावनात्मक प्रभावों के भी वैज्ञानिक दस्तावेजीकरण के प्रमाण हमने इस पुस्तक में प्रस्तुत किए हैं। प्राणायाम के परम्परागत वैदिक ज्ञान और इन वैदिक प्रमाणों के आधार पर किए गए प्राणायामों के प्रयोग पर वैज्ञानिक शोध व अनुसंधान के आधार पर, आज हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान विश्व में जब विज्ञान की दुनिया प्रत्येक क्षेत्र में नैनोटैक्नोलाजी की ओर जा रही है ऐसे समय में चिकित्सा विज्ञान की नैनोटैक्नोलॉजी 'प्राण' के सिवा और क्या हो सकती है?

प्राणायाम का महत्त्व एवं लाभ

प्राण का आयाम (नियन्त्रण) ही प्राणायाम है। हमारे शरीर में जितनी भी चेष्टाएँ होती हैं, सभी का प्राण से प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध है। प्रतिक्षण जीवन और मृत्यु का जो अटूट सम्बन्ध मनुष्य के साथ है, वह भी प्राण के संयोग से ही है। संस्कृत-भाषा में 'जीवन' यह शब्द 'जीव् प्राणधारणे' धातु से बना है और 'मृत्यु' शब्द 'मृङ् प्राणत्यागे' से। हमारे वेद, शास्त्र एवं उपनिषदों में प्राण की अनन्त महिमा गाई गई है। अथर्ववेद में कहा है-**प्राणापानौ मृत्योर्मा पात स्वाह**। अर्थात्, प्राण और अपान ये दोनों मेरी मृत्यु से रक्षा करें। मनु महाराज प्राणायाम के विषय में कहते हैं:

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥ (मनु : 6.71)

जैसे अग्नि आदि में तपाने से सुवर्ण आदि धातुओं के मल, विकार नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम से इन्द्रियों एवं मन के दोष दूर होते हैं। 'हठयोगप्रदीपिका' में कहा है :

प्राणायामैरेव सर्वे प्रशुष्यन्ति मला इति।
आचार्याणान्तु केषाञ्चिदन्यत् कर्म न सम्मतम्॥ (ह० प्र० : 2.38)

मन विक्षेप आवरण को दूर करने के लिए प्राणायाम के अतिरिक्त अन्य कोई भी कर्म मान्य नही है। विभिन्न प्राणायामों के करने से शरीर, मन व इन्द्रियों के सभी मल सूख जाते हैं।

आसनेन रुजं हन्ति प्राणायामेन पातकम्।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण मुंचति॥
(योगचूड़ामण्युपनिषद् 109)

आसन से योगी रजोगुण (मनश्चंचलता) को, प्राणायाम से पापवृत्ति को और प्रत्याहार से मानसिक विकार को दूर करता है।

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्। (ह० प्र० : 2.2)

प्राण एवं मन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्राण के रुकने से मन स्वतः एकाग्र हो जाता है।

योगदर्शन में भी कहा है कि- **ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्, धारणासु च**

योग्यता मनसः। (योगदर्शन 2.52,53)

प्राणायाम करने से मन पर पड़ा हुआ असत्, अविद्या एवं क्लेश-रूपी तमस् का आवरण क्षीण हो जाता है। परिशुद्ध हुए मन में धारणा (एकाग्रता) स्वतः होने लगती है तथा धारणा से योग की उन्नत स्थितियों-ध्यान एवं समाधि-की ओर आगे बढ़ा जाता है।

गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य च ।
नैव सन्ति हि पापानि पूर्वजन्मकृतानि च ॥

पवित्र ग्रन्थ गीता के स्वाध्याय व प्राणायाम के नियमित अभ्यास से चित्त में संचित पूर्वजन्म की अशुभ वृत्तियों (पापों) का नाश हो जाता है।

योगासनों से हम स्थूल शरीर की विकृतियों को दूर करते हैं। सूक्ष्म शरीर पर योगासनों की अपेक्षा प्राणायाम का विशेष प्रभाव होता है, प्राणायाम से सूक्ष्म शरीर ही नहीं, स्थूल शरीर पर भी विशेष प्रभाव प्रत्यक्ष रूप से होता है। हमारे शरीर में फेफड़ों, हृदय एवं मस्तिष्क का एक विशेष महत्त्व है और इन तीनों का एक दूसरे के स्वास्थ्य से घनिष्ठ सम्बन्ध भी है।

स्थूल रूप से प्राणायाम श्वास-प्रश्वास के व्यायाम की एक पद्धति है, जिससे फेफड़े बलिष्ठ होते हैं, रक्त-संचार की व्यवस्था सुधरने से समग्र आरोग्य एवं दीर्घ आयु का लाभ मिलता है। शरीर-विज्ञान के अनुसार मानव के दोनों फेफड़े श्वास को अपने भीतर भरने के लिए वे यन्त्र हैं, जिनमें भरी हुई वायु समस्त शरीर में पहुँचकर ओषजन, अर्थात् ऑक्सीजन प्रदान करती है और विभिन्न अवयवों से उत्पन्न हुई मलिनता (कार्बोनिक गैस) को निकाल बाहर करती है। यह क्रिया ठीक तरह होती रहने से फेफड़े मजबूत होते हैं और रक्त-शोधन का कार्य चलता रहता है।

प्रायः अधिकतर व्यक्ति गहरा श्वास लेने के अभ्यस्त नहीं होते, जिससे फेफड़ों का लगभग एक चौथाई भाग कार्य करता है। शेष तीन-चौथाई भाग लगभग निष्क्रिय पड़ा रहता है। शहद की मक्खी के छत्ते की तरह फेफड़ों में प्रायः सात करोड़ तीस लाख 'स्पंज' जैसे कोष्ठक होते हैं। साधारण हल्का श्वास लेने पर उनमें से लगभग दो करोड़ छिद्रों में ही प्राणवायु का संचार होता है, शेष पाँच करोड़ तीस लाख छिद्रों में प्राणवायु न पहुँचने से ये निष्क्रिय पड़े रहते हैं। परिणामतः इनमें जडता और मल, अर्थात् विजातीय द्रव्य जमने लगते हैं, और क्षय (टी. बी.), खाँसी, ब्राँकाइटिस आदि भयंकर रोगों से व्यक्ति आक्रान्त हो जाता है।

इस प्रकार, फेफड़ों की कार्यपद्धति का अधूरापन रक्त-शुद्धि व रक्तसंचार पर

प्रभाव डालता है। उद्वेग, चिन्ता, क्रोध, निराशा, भय, कामुकता इत्यादि मनोविकारों का समाधान 'प्राणायाम' द्वारा सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इतना ही नहीं, मस्तिष्क की क्षमता के साथ स्मरण-शक्ति, कुशाग्रता, सूझ-बूझ, दूरदर्शिता, सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, धारणा, प्रज्ञा व मेधा इत्यादि मानसिक विशेषताओं का अभिवर्धन करके 'प्राणायाम' द्वारा दीर्घजीवी बनकर जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त किया जा सकता है।

इस स्थिति में प्राणायाम की महत्ता व्यक्ति की दीर्घ आयु के लिए अत्यधिक हो जाती है। विभिन्न रोगों का निवारण प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु का नियमन करने से सहजतापूर्वक किया जा सकता है। इस विज्ञान, अर्थात् प्राणवायु के विज्ञान की जानकारी से मानव स्वयं तथा दूसरों के स्वास्थ्य को सुव्यवस्थित करके सुखी एवं आनन्दपूर्ण जीवन का पूर्ण लाभ लेता हुआ अपनी आयु को बढ़ा सकता है। यही कारण है कि सनातन धर्म शुभ कार्य में तथा सन्ध्योपासना के नित्य-कर्म में 'प्राणायाम' को एक आवश्यक धर्म-कृत्य के रूप में सम्मिलित करता है।

प्राणायाम करने से दीर्घ श्वसन का अभ्यास भी स्वतः होने लगता है। भगवान् की ओर से हमें जो जीवन मिला है, उसमें प्राण या श्वास गिनकर मिलते हैं। जिसके जैसे कर्म होते हैं, उसी के अनुसार उसको अगला जन्म मिलता है।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः। **(योगदर्शन : 2.13)**

पुण्य या अपुण्य कर्म के फलस्वरूप ही व्यक्ति को मनुष्य, पशु, कीटादि योनियों में जन्म, आयु और भोग प्राप्त होता है। प्राणायाम करने वाला अपने श्वासों का कम प्रयोग करता है; इसलिए वह दीर्घायु भी होता है। वैसे भी इस सृष्टि में जो प्राणी जितने कम श्वास लेते हैं उतने ही दीर्घजीवी भी होते हैं।

जो प्राणी जिस गति से श्वास लेता है, उसी के अनुसार उसकी आयु भी है, ऐसा हम प्रत्यक्ष देखते हैं। कछुआ एक मिनट में सामान्यतः 4 से 5 श्वास लेता है और उसकी आयु 200 से 400 वर्ष तक पाई जाती है। एक मनुष्य सामान्यतः 12 से 18 श्वास लेता है अतः औसत श्वास संख्या 16 होती है। यद्यपि प्राणायाम के समय श्वासों की संख्या भस्त्रिका, कपालभाति या अनुलोम-विलोम आदि में कम या ज्यादा हो जाती है तथापि प्राणायाम के द्वारा श्वासों पर नियंत्रण आने पर प्राणायाम के बाद दिन भर श्वासों में एक लय एवं स्थिरता रहती है। अतः योगाभ्यासी पुरुष के एक मिनट में औसत श्वास प्रारम्भिक अवस्था में 8 से 10 प्रति मिनट तक होते जाते हैं तथा प्राणायाम के लम्बे अभ्यास से एक मिनट में योगाभ्यासी पुरुष के श्वासों की संख्या 4 से 6 हो जाती है। एक सामान्य व्यक्ति जब एक मिनट में औसत 16 श्वास लेता है तो उसकी औसत

आयु लगभग 100 वर्ष की होती है। एक सामान्य मनुष्य 24 घंटे में 23 हजार 40 श्वास लेता है अर्थात् सामान्य व्यक्ति एक दिन में लगभग 24 घंटों में 24 हजार श्वास लेता है जबकि योगी पुरुष एक दिन (24 घंटे) में लगभग 6 हजार श्वास लेता है। जब एक मिनट में सामान्यत: 16 श्वास चलने पर व्यक्ति की औसत आयु लगभग 100 वर्ष होती है तो योगाभ्यासी पुरुष की एक मिनट में लगभग 4 श्वास चलने पर पूर्णायु लगभग 400 साल तक हो जाती है। हमारे शास्त्रों एवं ऋषि-मुनियों की भी मान्यता के अनुसार मनुष्य की अधिकतम आयु 400 वर्ष तक मानी गई है। योगाभ्यासी पुरुष की प्रारम्भ में श्वास-संख्या 8 तथा प्राणायाम एवं ध्यान के नियमित अभ्यास से 4 तक श्वास-संख्या हो जाती है। अत:, योगी 400 वर्ष तक की दीर्घ आयु प्राप्त कर सकता है। ऋषियों के दीर्घजीवी होने का यही रहस्य है। जैसा कि मनुस्मृति में कहा है-

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद् दीर्घमायुरवाप्नुयु:।
प्रज्ञां यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसमेव च।।

अर्थात् ऋषि प्रतिदिन दीर्घकाल तक सन्ध्या (सम्यक् ध्यान) करनेसे लम्बी आयु पाते हैं। इसके साथ ही वे प्रज्ञा, यश, कीर्ति और ब्रह्मतेज को भी पाते हैं।

प्राण की महिमा बताते हुए चरक संहिता में कितना सुन्दर कहा है-

वायुस्तन्त्रयन्त्रधर:, प्रवर्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां,
नियन्ता प्रणेता च मनस:, सर्वेन्द्रियाणामुद्योजक:,
सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढा आयुषोऽनुवृत्तिप्रत्ययभूत:।। (चरकसंहिता)

वायु देहरूपी यंत्र का धारण करने वाला है, इसकी सब चेष्टाओं का प्रवर्तक है। अवांछित विषयों की ओर जाने वाले मन का नियंत्रक है तथा वांछित विषयों में मन का प्रेरक है। सब इन्द्रियों का भी प्रेरक है। सब इन्द्रियार्थों को मन की ओर ले जाने वाला और आयु की निरन्तरता का साक्षी बना हुआ है।

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम्।
वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तित:।। (चरकसंहिता)

वायु जीवन है, वायु बल है, वायु जीवों का धारक है, वायु ही इस विश्व का कारण है और वायु ही सब का प्रभु कहा गया है।

शरीरं हि विना वायुं समतां याति दारुभि: ।
वायु: प्राण: सुखं वायुर्वायु: सर्वमिदं जगत् ।। (रामायण)

वायु के विना देह लकड़ियों के तुल्य (चेतनारहित) हो जाता है। इसलिए वायु ही शरीर का प्राण अर्थात् जीवन है, संक्षेप में सब कुछ है।

येन जीवति जीवोऽयं निर्जीवो यं विना भवेत्।
स प्राण इति विख्यातो वायुः क्षेत्रचरः परः॥ (शार्ङ्गधरपद्धति)

जिससे जीव जीवित रहता है, जिसके बिना (देह) निर्जीव हो जाता है, वह प्राण कहलाता है। क्षेत्र (शरीर) में विचरण करने वालों में यह प्राणवायु सर्वश्रेष्ठ है।

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात्।
प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, प्राणेन जातानि जीवन्ति प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। (तैत्तिरीयोपनिषद् 3.3)

प्राण से ही जीव उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होने पर प्राण से ही जीवित रहते हैं और अन्त काल में प्राण में ही विलीन हो जाते हैं।

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति मनुष्याः पशवश्च ये।
प्राणो हि भूतानामायुस्तस्मात्सर्वायुषमुच्यते॥ (तैत्तिरीय उ. 2.3)

देवता, मनुष्य तथा पशु-पक्षी प्राण के अनुगामी होकर प्राणन (जीवन) किया करते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए वह 'सर्वायुष' (सब का जीवन) कहलाता है।

सर्वमेव त आयुर्यान्ति ये प्राणं ब्रह्मोपासते ।
प्राणो हि भूतानामायुस्तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। (तैत्तिरीय उ. 2.3)

जो प्राण की ब्रह्मरूप से उपासना करते हैं, वे पूर्ण आयु को प्राप्त करते हैं। प्राण ही प्राणियों की आयु है। इसलिए वह 'सर्वायुष' कहलाता है।

आथर्वणीराङ्गिरसीर्दैवी मनुष्यजा उत।
ओषधयः प्रजायन्ते यदा त्वं प्राण जिन्वसि॥ (अथर्ववेद 11.4.16)

हे प्राण! जब तक तुम प्रेरणा करते (हुए शरीर में रहते) हो तब तक ही आथर्वणी, आङ्गिरसी, दैवी और मनुष्यकृत औषधियाँ सफल होती हैं।

प्राणायामेन युक्तेन सर्वरोगक्षयो भवेत्।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वरोगस्य संभवः॥ (हठयोगप्रदीपिका)

विधियुक्त किए हुए प्राणायाम से सर्व रोगों का नाश होता है और विधि-विरुद्ध प्राणायाम करने से सब रोग हो सकते हैं।

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।
मनश्च बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते॥ (हठयोगप्रदीपिका)

जिस उपाय से वायु का निग्रह होता है उससे मन का भी निग्रह होता है और जिस उपाय से मन का निग्रह होता है उससे वायु का भी निग्रह होता है।

प्राणोपासना का फल-

यथा प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।
एवा तस्मै बलिं हरान्यस्त्वा शृणवत् सुश्रवः॥ (अथर्व 11.4.19)

प्राण यथा- हे प्राण! जैसे
इमाः सर्वाः प्रजाः- ये सब प्रजाएं
तुभ्यं- तेरे लिए
बलिहृतः- बलि (कर) देने वाली होती हैं।
एवा- इसी तरह
सुश्रवः- जो उत्तम श्रोता
यःत्वा शृणवत्- तुझ को सुनता है
तस्मै बलिम् हरान्-उसके लिए बलि देता है।

प्राण का अर्थ है जीवन-साधन। आत्मा जब शरीर में आता है, तब उसके साथ प्राण भी वहाँ डेरा आ लगाते हैं। प्राण के अन्दर आने और बाहर जाने से शरीर में आत्मसत्ता का बोध होता है। आत्मा शरीर को छोड़ कर चला जाए, तो प्राण भी शरीर में नहीं रहते। आत्मा अभौतिक है, उसकी भूख को भौतिक पदार्थ नहीं मिटा सकते। फिर यह हम जो खाते-पीते हैं, पृथिवी से अन्न, फल, मेवे आदि के रूप में कर लेते हैं, जल-दूध आदि पेय पदार्थों का पान करते हैं, आग तापते हैं, कम्बल ओढ़ते हैं। यह सब किसके लिए? वेद उत्तर देता है-

प्राण बलिहृतस्तुभ्यं सर्वाः प्रजा इमाः।

'हे प्राण! ये आग-हवा-पानी-पृथिवी रूपी सारी प्रजाएँ तुझे कर दे रही हैं।'

इसका प्रमाण यह है कि खाने-पीने से शरीर पुष्ट होता है, इन्द्रियाँ सबल होती हैं। प्राण शक्ति दृढ़ होती है। खाने या न खाने से आत्मा में वृद्धि या ह्रास नहीं होता। यदि खाना-पीना आत्मा के वृद्धि-ह्रास का कारण होते, तो सारे पेटू आत्मिक उन्नति वाले होते, किन्तु पेटू महानुभाव तो केवल राक्षसधर्म का पालन करते हैं, खाते-पीते, मौज उड़ाते हैं। इस वास्ते खाना-पीना वास्तव में प्राण के

लिये है। प्राणवायु और पेट की अग्नि मिल कर शरीरस्थ धातुओं को जब क्षीण करते हैं उस समय भूख लगती है। तब अन्न आदि के द्वारा उसको मिटाना होता है। इस प्रकार जब वे शरीरस्थ जल तत्त्व को सुखाते हैं, तब प्यास लगती है, उसे मिटाने के लिए पानी का सेवन करना होता है। भोजन और अन्न-पान प्राण के प्रति कर-प्रदान है।

किन्तु प्राण का कार्य केवल अन्न-पान लेना और उसे जीर्ण करना और फिर उसके लिये अपेक्षा करना ही नहीं है। भोजन और पान के समय यदि सूक्ष्मता से निरीक्षण करें तो प्राण रुक जाता है, श्वास की नली बन्द हो जाती है। उस समय यदि श्वास की नली खुली रह जाए, तो अन्न या जल श्वास की नली में चला जाता है, और बहुत बेचैनी हो जाती है। वह बेचैनी तब तक नहीं मिटती, जब तक श्वास-प्रणाली में गया अन्न या जल बाहर न हो जाए। इससे सिद्ध होता है कि जहाँ जीवन प्राण के आश्रय से है, वहाँ जीवन के लिये प्राणनिरोध भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि प्राण की क्रिया न रुके, तो प्राण बलि नहीं ले सकता।

नीचे से भार आदि उठाते समय भी प्राण अगत्या रोकने पड़ते हैं, यदि उस समय प्राण बाहर निकल जायें, तो भार हाथों से गिर पड़ता है। इससे प्रतीत होता है, प्राण-निरोध में बड़ा बल है।

कदाचित् इसी कारण मनु जी ने कहा है-

प्राणायामः परं तपः- 'प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है।'

प्राण के इन और इसी प्रकार के अन्य रहस्यों को जो सुनता है, वह 'सुश्रवः' है। सुनना उसी का सफल है, जो प्राण की इन शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

तस्मै बलिं हरान्- उसे प्राण भी 'कर' देता है।

कर वही दिया करते हैं, जो किसी के अधीन होते हैं। अर्थात् ज्ञान प्राप्त करके जो उसके अनुसार अनुष्ठान करते हैं, प्राण उनके अधीन हो जाता है। अतः प्राण को वश में करने के लिए प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये। प्राण वश करते हुए भी धोंकनी की भाँति प्राण का संचालन करना होता है।

इसलिए मनु ने बताया-

प्राणायामैर्दहेद् दोषान्।

प्राणायाम के द्वारा शारीरिक और मानसिक दोष दूर करने चाहिए।

प्राण के द्वारा ज्ञान-

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः। अविन्द उस्रिया अनु॥

(ऋग्. 1.6.5)

शब्दार्थ- **इन्द्र** हे जीवात्मन्! **आरुजत्नुभिः** पीड़ा देनेवाले, श्रान्त करने वाले **वह्निभिः** जीवनधारण के कारणभूत प्राणों के द्वारा **गुहा चित्** छिपी हुई भी **उस्रिया** ज्ञानकिरणों को **वीळु चित्** शीघ्रता से ही **अनु अविन्दः** अनुकूलता से प्राप्त करता है।

व्याख्या:- थोड़े से शब्दों में प्राणायाम का महत्त्व बतलाया है। यहाँ प्राण को प्राण न कहकर 'वह्नि' कहा गया है। लौकिक संस्कृत में वह्नि शब्द का अर्थ है आग। जब तक प्राण शरीर में रहते हैं तभी तक शरीर में जीवनाग्नि रहता है। प्राणों ने प्रयाण किया और शरीर ठण्डा पड़ गया, अतः प्राण सचमुच आग है। आग जहाँ सुख का साधन है, पीड़ा भी देती है। आग की पीड़ा का अनुभव गर्मी की ऋतु में पूरी तरह होता है। प्रत्येक पदार्थ सूखने लगता है। इसी प्रकार प्राण-अग्नि को जब ईंधन नहीं मिलता, तब यह शरीरस्थ मांस और रक्त को जलाने लगता है, किन्तु प्राणों का पीड़ादायकत्व पूरा-पूरा मरण समय में ज्ञात होता है। भोग समाप्त हो चुका है। कालाग्नि प्राणपखेरू को देहपिंजरे से निकालने को आया है। प्राण के मार्ग रुके हैं। उसे राह नहीं मिल रही है। जोर लगा रहा है, तड़प रहा है। मुमूर्षु की यह दुर्दशा देखकर मुमुक्षु इन पीड़ादायक प्राणों को वश में करता हैं। मृत्युसमय निकट आया जान आराम से इन प्राणों को खींचकर वह बाहर कर देता है।

वह प्राणों को आग (जलानेवाला) न रहने देकर वेद का वह्नि (धारक, ले चलने वाला) बना देता है। अब प्राण को वह्नि बना लिया गया है, वे धारित किये गये हैं, उनकी गति रोक दी गई है, अतः वे भी धारक बन गये हैं। इस विषय में प्राण और धर्म की एक ही गति है। मारने से धर्म मार देता है, पालने से पालता है, प्राण आग बना देने से जलाता है, वह्नि (धारण करने वाला) बना देने से जिलाता है। चुन लो, जीना है या जलना है?

वह्नि बनकर भी प्राण आरुजत्नु (तोड़ने-फोड़नेवाले) बने हुए हैं। अब ये अंगों को नहीं तोड़ते, अब ये शरीर को पीड़ा नहीं देते, क्योंकि प्राणों की क्रिया से शरीर का सब मल शुद्ध कर लिया गया है। अब यह आत्मा पर पड़े अज्ञान-आवरण के परदे को फाड़ते हैं। इसलिए वेद कहता है- **अविन्द उस्रिया अनु**-आत्मन्! तू ही ज्ञान-किरणों को अनुकूलता से प्राप्त कर लेता हैं।

योगिराज पतंजलि ने अपने अनुभव से वेद की इस सच्चाई की पुष्टि की है- **ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्** (योगदर्शन)। प्राणायाम की सिद्धि से बुद्धिप्रकाश पर पड़ा हुआ आवरण (पर्दा) नष्ट होता है।

वेद ने इससे भी अधिक बताया है-

यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा
देवानां वशनीर्भवाति। (ऋग्. 10.16.2)

जब साधक इस असुनीति (प्राणचालन-विद्या) को प्राप्त कर लेता है, तब वह इन्द्रियों का वशकर्त्ता हो जाता है।

इन्द्रियों को वश में करना है तो प्राण को वश में करो। बहुत गहरा अभिप्राय है। इन्द्रियाँ मन के अधीन हैं। मन बहुत चंचल है, जविष्ठ है- सबसे अधिक वेगवान् है। जिधर वह जाता है, इन्द्रियाँ भी उधर ही जाती हैं। प्राणचालन-विद्या से इन्द्रियों को वश में करने के अर्थ हैं इन्द्रियाधिष्ठाता मन को भी वश में करना। यह अवस्था योग है। जैसा कि कठोपनिषद् में कहा है-

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्॥

(2.3.10-11)

जब मन के साथ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ रुक जाती हैं और बुद्धि भी निश्चल हो जाती हैं, उस अवस्था को परमगति कहते हैं। इन्द्रियों की उस स्थिर धारणा को योग मानते हैं। इन्द्रियाँ वश में करनी हों, अर्थात् इन्द्रियों से यथायोग्य उपयोग लेना हो तो प्राणायाम का अभ्यास कर। बुद्धि पर से अज्ञान का परदा नाश करना हो, उज्ज्वल, विमल, धवल ज्ञान प्रकाश प्राप्त करना हो, तो प्राणायाम में सिद्धि प्राप्त करो।

प्राणायाम के महाज्ञानी ऋषि दयानन्द **'सत्यार्थप्रकाश'** के तृतीय समुल्लास में लिखते हैं- 'जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जब तक मुक्ति न हो तब तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है। ......जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर वे शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। ......प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियाँ भी स्वाधीन होते हैं। बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र,

सूक्ष्मरूप हो जाती है कि जो कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिरबल, पराक्रम, जितेन्द्रियता (प्राप्त होती है), सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करें।'

प्राणायाम की महिमा में वेद, मनु, पतंजलि, दयानन्द सभी एकमत हैं।

प्राणरक्षित सर्वथा रक्षित रहता है-

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति।

नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ॥

(ऋग्. 5.54.7)

शब्दार्थ- मरुतः हे प्राणो! **यम्** जिस **ऋषिम्** ज्ञानी को **वा** अथवा **राजानम्** रक्षाकर्मपरायण कर्मशील को **वा** अथवा किसी अन्य को **सुषूदथ** सुख देते हो, **सः** वह **न** नहीं **जीयते** हानि उठाता, **न** नहीं **स्रेधति**-क्षीण होता, आयु में कम नहीं होता **न + व्यथते** न डरता-काँपता है **न + रिष्यति** न रिस करता है, क्रोध करता है **न** न ही **अस्य** इसके **रायः** धन **उपदस्यन्ति** क्षीण होते हैं और **न** न ही इसकी **ऊतयः** प्रीतियाँ, रक्षाएँ तथा व्यवहार नष्ट होते हैं।

व्याख्या:- मनुष्य को अनेक भय लगे रहते हैं, कभी आयु घटने का, कभी मरने का, कभी किसी से प्रताड़ित होने का, कभी किसी रोग आदि से शरीर में कँपकँपी हो जाती है, कभी धननाश का भय उसे सताता है तो कभी प्रीतिनाश की भीति उसे व्याकुल करती है। वेद कहता है, इन सब उपद्रवों से बचना चाहते हो तो प्राण की शरण में आओ। यदि प्राणों को अपने त्राण में लगा सको तो तुम्हें किसी प्रकार का भय विह्वल नहीं करेगा।

सभी मानते हैं कि प्राण के अभ्यास से आयु बढ़ती है, अतः जो प्राण की साधना करेगा, उसकी आयु बढ़ेगी, घटेगी नहीं। प्राण का साधन करने से मृत्यु का क्लेश भी नहीं हो सकता। मरना तो अवश्यंभावी है। जो जन्मा वह अवश्य मरेगा- **जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः**। उत्पन्न की मौत निश्चित है, किन्तु मरणसमय में प्राण निकलने से मुमूर्षु को जो पीड़ा होती है, प्राणाभ्यासी उससे बच जाता है। मृत्यु संनिहित देखकर वह तत्काल आयास के बिना प्राण को बाहर निकाल देता है। प्राणानुष्ठान से उसे आत्मज्ञान होता है और वह अनुभव करता है कि सबमें मेरे आत्मा के समान आत्मा का वास है, तब हिंसा और क्रोध से हट जाता है। किसी की त्रुटि के कारण क्रोध आया करता है। प्राणों ने अपनी त्रुटियों का ज्ञान करा दिया है, अब वह अपनी त्रुटियों के निवारण में संलग्न है। उसे अवकाश ही नहीं कि दूसरों के दोष देखे। है तो वह अब भी दोषदर्शी, किन्तु स्वदोषदर्शी, न

कि परदोषदर्शी। डर या कँपकँपी पदार्थनाश की सम्भावना से होते हैं। जब वह सम्भावना ही न रही, तब डर काहे का?

ऐसे संयमी का धन कभी नष्ट नहीं हो सकता, क्योंकि प्राणसाधक को अत्यन्त संयम से जीवन बिताना होता है, सभी दुर्व्यसनों से अपने-आपको बचाकर रहना होता है। सबको आत्मवत् जानने से वह सभी से प्रीति की रीति से नीतियुक्त व्यवहार करता है, अतः वह सबका प्रीतिभाजन बन जाता है।

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत।

(ऋग्. 1.64.13)

मरुतः हे प्राणो! सचमुच वह मनुष्य बल के कारण जनसाधारण से बढ़कर रहता हैं जिसकी तुम अपनी प्रीति से रक्षा करते हो।

प्राण में बड़ा बल है। भूमि से कोई भी भार उठाते समय यदि बीच में श्वास बाहर निकल जाए तो वह भार हाथ से गिर पड़ता है, क्योंकि बल का आधार प्राण बाहर चला गया। अतः बल के इच्छुकों को प्राणसाधना का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिए।

प्राणों की कोई विरला ही सुनता है-

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुबतेऽध्वन्ना । शृणोति कश्चिदेषाम्॥

(ऋग्. 1.37.13)

शब्दार्थ- यत् + ह - जभी **मरुतः**-प्राण **यान्ति**-चलते हैं, ह-सचमुच **अध्वन्** मार्ग को **आ**- सब ओर से **सं+ब्रुवते**- भली प्रकार बताते जाते हैं। **कश्चित्**- कोई विरला ही **एषाम्**- इनकी, प्राणों की बात को **शृणोति**-सुनता है।

व्याख्या- यह विश्व वैचित्र्य का भण्डार है। छोटा-सा संसार 'हमारा शरीर' भी एक अच्छा-खासा अद्भुतालय है। शरीर में आँख, नाक, कान आदि को किसी के साथ आसक्ति है। आँख रूप की प्यासी है, कान शब्द के भूखे हैं, रसना रस की रसिया है, नाक को गन्धमाल्य से प्रेम है, त्वगिन्द्रिय को छूत की बीमारी है। रूप आदि आँख आदि को लुभाकर इनको कर्तव्य से च्युत कर देते हैं, किन्तु प्राणों को किसी की आसक्ति नहीं, सुन्दर-से-सुन्दर रूप, मधुर-से-मधुर शब्द, मीठे-से-मीठे रस, कोमल-से-कोमल स्पर्श और भीनी-से-भीनी सुगन्ध भी इसके कार्य में प्रतिबन्ध नहीं डाल सकती। यजुर्वेद में बहुत सुन्दर कहा है- **'तत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ'** उस शरीर में स्वप्न (निद्रा) के वश में न होने वाले जीवनयज्ञ को चलाने वाले देव जागते रहते हैं। आँख झपक जाती हैं, मुँद जाती हैं। जीभ भी ऊब जाती है। इसी प्रकार सभी इन्द्रियों

पर क्लान्ति भाव आक्रान्त हो जाता है, किन्तु प्राण सदा जागते रहते हैं। बड़े पक्के पहरेदार हैं। ये ऐसे हितकर हैं- **यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना-** जब ये चलते हैं तो अपना मार्ग पूरा बताते हैं।

किसी नन्हे बालक को सुप्त दशा में देखो, उसके प्राण कहाँ से कहाँ तक जा रहे हैं। स्पष्ट नाभि तक जाते और वहाँ से वापस ऊपर को आते हैं। तनिक बालक के तालु पर हाथ रखो। वहाँ जो पिलपिला-सा स्थान है, उस पर ध्यान से हाथ रखो। प्राण की प्रबल ठोकर लगती दीखेगी। प्राण इस प्रकार अपना मार्ग बता रहे हैं कि हमारा मार्ग नीचे से ऊपर को जाना है। ऐसा प्रबन्ध करो कि प्राण ऊपर को पहुँच जायें। प्राण सदा चलते हैं। अतः सदा अपना संदेश देते रहते हैं। किन्तु- **'शृणोति कश्चिदेषाम्'** इनकी सुनता कोई विरला ही है। जो सुनता है वह **'नि वो यायाम मानुषो दध उग्राय मन्यवे । जिहीत पर्वतो गिरिः'** (ऋग्. 1.37.7) मनुष्य का बच्चा तुमको पहर भर के लिये भी यदि उग्र विचार के लिये रोक देता है तो गाँठोंवाला गिरिः पहाड़ भी काँप जाता है। पहरभर प्राणों की बात सुनो, उनको रोको, तुम्हारा अन्तःपर्वत (मेरुदंड) हिल जायेगा। सुषुम्णा जाग पड़ेगी। अधिक क्या कहें, सुषुम्णा को जगाने के लिये समय की अवधि का विधान भी कर दिया। एक पहर भर अडोल आसन, निरुद्ध प्राण सुषुम्णा को जगा देते हैं। अनुभवी अपने अनुभव से इसकी पुष्टि करते हैं।

दो वायु (प्राण-अपान)-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आ वातु पराऽन्यो वातु यद्रपः।। **(ऋग्. 10.137.2)**

हमारे शरीर में (द्वौ इमौ वातौ) दो प्रकार की प्राण और अपान नाम की वायु (वातः) चल रही है। उन दोनों में से एक तो (आ+परावतः) बाहर के वायुमण्डल तक है। हे प्राणायाम के अभ्यासी मनुष्य! उनमें से एक अर्थात् प्राण-वायु तो (ते) तेरे अन्दर (दक्षम्) आरोग्य, बल, उत्साह, और जीवन-शक्ति को (आवातु) ले आवे ओर (अन्यः) दूसरी अर्थात् अपान-वायु (यद्रपः) जो तेरे अन्दर निर्बलता और रोग हैं, उन्हें (परा वातु) शरीर से परे अर्थात् बाहर निकाल देवे।

प्राण की सहायता से पाप का जीतना-

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि।।
(ऋग्. 8.96.7)

विश्वे देवाः = सम्पूर्ण दिव्य गुण

ये सखायः = जो पहले सखा थे

वृत्रस्य श्वसथात् = वे पाप के श्वास से

ईषमाणाः = भयभीत होते हुए

त्वाम् अजहुः = तुझ को छोड़ गये

इन्द्र = (अतः) हे इन्द्र ऐश्वर्याभिलाषिन् जीव!

मरुद्भिः = मरुतों (प्राणों) के साथ

ते सख्यम् अस्तु = तेरा सख्य हो

अथ = तो

इमाः विश्वाः = इन सारे

पृतनाः = पृतनों (उपद्रवों) को

जयासि = जीत सके

आत्मा के अन्दर अनेक दिव्य गुण हैं। दया, क्षमा, धृति, शौच, संयम, अहिंसा, सत्य, दम आदि नाना गुण हैं। जब तक आत्मा में पाप का प्रवेश नहीं होता, ये गुण निरन्तर बढ़ते रहते हैं। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का चर्तुवर्ग भी पवित्र आत्मा में अविरोधभाव के साथ रहता है। चारों- **गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्**- मानो गुणों के प्रेम के कारण परस्पर मित्र बने हुए हैं। देवों का वृत्र के साथ सदा संग्राम रहा करता है। 'वृत्र' आच्छादक पाप को कहते हैं। पाप सद्गुणों का विरोध करता है।

सद्गुण पाप को मार भगाने का यत्न करते हैं। इस प्रकार आत्मा से द्वन्द्व छिड़ जाता है। जब आत्मा वृत्र की ओर अधिक झुक जाता है, तब वृत्र के श्वास के डर के मारे-

विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः

'सारे दिव्यगुण जो पहले आत्मा के सखा थे, आत्मा को छोड़ जाते हैं।'

पाप की वृद्धि के साथ सब देव (दिव्यगुण) नष्ट हो जाते हैं। दिव्यगुणों के नाश के साथ आत्मा का क्या रह जायेगा? यदि आत्मा की तथा दिव्यगुणों की रक्षा करनी है तो पाप को मार भगाओ। पाप को मार भगाने के लिए **'मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्तु'** 'प्राणों के साथ, हे इन्द्र! तेरा सख्य होना चाहिए।' प्राणों के साथ सख्य का अर्थ है प्राण आत्मा के अनुकूल चलें। इस समय अवस्था यह है साधारण मनुष्यों को अपने श्वास-प्रश्वासों की गति का कोई ज्ञान नहीं है। वे परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार अन्दर आते और बाहर जाते हैं। आत्मा का शरीर

में वास होने के कारण वे शरीर में बंधे अवश्य हैं किन्तु आत्मा की अनुकूलता से गति नहीं करते। यदि प्राण आत्मा की अनुकूलता से गति करें, तो शरीर में कभी रोग हो ही न। प्राण यदि आत्मा के वश में हों, तो मन और इन्द्रिय भी आत्मा के वश में ही रहें। यदि मन वश में आ जाए, तो इन्द्रियाँ तो अपने आप वश में हो जाएँ, क्योंकि वे तो हैं ही मन के अधीन। प्राण के वश में होने से मन का वश में होना अनुभव से सिद्ध होता है। अतः वेद कहते है- **'अथेमा विश्वाः पृतना जयासि'** तब इन सब उपद्रवों को जीत सकेगा। पाप से जितने उपद्रव पैदा होते है उन सब का नाश प्राण की मैत्री 'अनुकूलता' से हो जाता है। इसका एक हेतु है, प्राण सबका स्वामी है। जैसा कि अथर्ववेद में कहा गया है **'प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे'** प्राण को नमस्कार जिसके वश में यह सब कुछ है। ऐसे उस प्राण के सर्वस्वामी होने में संदेह ही क्या है? अतः इस सर्वस्वामी प्राण की मैत्री अवश्य करनी चाहिए।

प्राण की मैत्री प्राणायाम-साधन से होती है। प्राणायाम (प्राणनिरोध) न करने से हानि होती है। जैसा कि अथर्व (11.3) में कहा गया है-

स य एवं विदुष उपद्रष्टा भवति प्राणं रुणद्धि ॥54॥
न च प्राणं सर्वज्यानिं जीयते पुरैनं जरसः प्राणो जहाति ॥56॥

जो इस तत्व (ब्रह्मज्ञान) प्राप्ति के जानने वाले का शिष्य होता है, वह प्राण का निरोध (प्राणायाम) करता है। यदि प्राणनिरोध (प्राणायाम) नहीं करता है, तो सारी आयु की हानि उठाता है। यदि आयु की हानि नहीं उठाता, तो प्राण बुढ़ापे से पूर्व छोड़ जाता है।

इस संदर्भ से सिद्ध हुआ प्राणायाम न करने से मनुष्य की हानि होती है। प्राणायाम के बिना शरीर में वीर्यरक्षा संभव नहीं है। वीर्य जीवन का सार है, जीवन का आधार है। इस जीवनाधार का आधार प्राणायाम है। अतः सिद्ध हुआ कि प्राणायाम का अभ्यास दीर्घजीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है। प्राणायाम का जो विवरण वेद में दिया गया है, उससे यह सिद्ध होता है कि प्राणायाम का अर्थ है प्राण को, 'जीवन शक्ति' को, अपने वश में करना। इस प्राणशक्ति को वश में करने से जहाँ आयु दीर्घ होती है वहां मृत्यु के समय कोई क्लेश नहीं होता। मृत्यु को समीप अनुभव करता हुआ आत्मा प्राणों को अनायास बाहर कर देता है। ऐसे महात्मा को मृत्युंजय कहते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास से पाप-नाश की चर्चा हमारे द्वारा अनेक बार की जा चुकी है। आत्मा को कई प्रकार के पृतनाओं (उपद्रवों) से सामना करना पड़ता है। प्राण के आश्रय से ही जीवन-क्रिया होती है, यह भी गत मंत्र में

कहा जा चुका है। यदि प्राण की क्रिया उचित रीति से न हो, तो खांसी, जुकाम (प्रतिश्याय), दमा, राजयक्ष्मा आदि नानाविध रोग प्राणी को आ घेरते हैं। अतः शरीर को रोगों से बचाने के लिये प्राण-नियन्त्रण अत्यन्त आवश्यक है। प्राण तथा मन का गहरा सम्बन्ध है। मन की चंचलता दूर करने के लिये प्राण का संयमन अनिवार्य हो जाता है। आत्मा तथा प्राण का सम्बन्ध प्रत्यक्ष है। आत्मा के बिना प्राण देह में ठहर नहीं सकते, तथा प्राण-चेष्टा के अभाव में शरीर में आत्मा की सत्ता का कोई अबाध्य प्रमाण नहीं मिलता। मन तथा इन्द्रियों के साथ मिलकर बहिर्मुख आत्मा को अन्तर्मुख करने के लिये, अपना आपा देखने के लिये, प्राणनिग्रह एक उत्तम साधन है। इस प्रकार विचारने से सिद्ध होता है कि शारीरिक, मानसिक दोषों को दूर करने के लिये प्राण को वश में करना अत्यन्त हितकारी है। अतः वेद का यह कहना कि-

'मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि' अत्यन्त युक्तियुक्त है।

बृहद्विष्णुः-
प्राणायामान् द्विजः कुर्यात् सर्वपापापनुत्तये।
दह्यन्ते सर्वपापानि प्राणायामैर्द्विजस्य तु॥

सभी पापों को दूर करने के लिये साधक को प्राणायाम करना चाहिए। प्राणायाम करने से सब पाप जल जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं।

विष्णुधर्मोत्तरपुराणाग्निपुराणयोः-
सर्वदोषहरः प्रोक्तः प्राणायामो द्विजन्मनाम्।
ततस्त्वभ्यधिकं नास्ति पापनाशनकारणम्॥

द्विजों के लिये प्राणायाम सब दोषों का नाशक बताया है। इससे बढ़कर पापों को नष्ट करने वाला कोई कारण नहीं है।

अत्रि-
कर्मणा मनसा वाचा ह्यह्ना पापं कृतं च यत्।
आसीनः पश्चिमां सन्ध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति॥

व्यक्ति दिन में मन-वचन-कर्म से जो दोष करता है उसे सायंकाल संध्या में प्राणायाम करने से दूर कर देता है।

अग्निपुराणम्-
प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राणायामैस्त्रिभिर्निशि।
अहोरात्रकृतात् पापात् मुच्यते नात्र संशयः॥

प्रातः सायं तीन-तीन प्राणायाम करने से मनुष्य दिन व रात में हुए दोषों से मुक्त हो जाता है।

वसिष्ठः-

प्राणायामान् धारयेत् त्रीन् यथाविधि सुयन्त्रितः।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥
(प्राणायामैर्दहेद् दोषान् प्राणायामः परं तपः)

प्रतिदिन संयमित होकर यथाविधि तीन प्राणायाम करें। इससे व्यक्ति रात दिन में होने वाले दोषों से मुक्त हो जाता है।

बृहस्पति-

प्राणायामैर्दहेद् दोषान् मनोवाग्देहसम्भवान्।

प्राणायाम से मन, वाणी व शरीर के दोष नष्ट हो जाते हैं।

बौधायन-

एतदाद्यं तपः प्रोक्तमेतद्धर्मस्य लक्षणम्।
सर्वदोषोपघातार्थमेतदेव विशिष्यते॥

यह (प्राणायाम) मुख्य तप कहा गया है। यह धर्म का लक्षण है। सभी दोषों का नाश करने के लिये यह विशिष्ट उपाय माना जाता है।

अत्रिवसिष्ठौ-

आवर्त्तयेत् सदा युक्तः प्राणायामान् पुनः पुनः।
आकेशाग्रान्नखाग्राच्च तपस्तप्यत उत्तमम्॥

मनुष्य सदा एकाग्रचित होकर पुनः पुनः प्राणायामों की आवृत्ति करे। जो ऐसा करता है वह नख-शिख तक परम तप करता है।

विष्णुधर्मोत्तराग्निपुराणयोः -

आकेशाग्रान्नखाग्राच्च तपस्तप्येत् सुदारुणम्।
आत्मानं शोधयत्येव प्राणायामः पुनः पुनः॥

जो प्राणायाम करता है वह नख-शिख तक कठोर तप करता है। पुनः पुनः किया गया प्राणायाम मनुष्य को पवित्र कर देता है।

बृहद्यमः -

यथा हि शैलधातूनां धम्यतां धम्यते रजः।
इन्द्रियाणां तथा दोषान् प्राणायामैश्च निर्दहेत्॥

जैसे धौंकी जाती हुई पर्वत की धातुओं का मल नष्ट हो जाता है उसी

प्रकार मनुष्य प्राणायामों से इन्द्रियों के दोषों को जलावे।

बृहस्पति : वाचस्पत्यम्- 4516 पृ. पर
धम्यमानं यथा ह्येतद्धातूनां धम्यते मलम्।
तथेन्द्रियकृतो दोषः प्राणायामेन दह्यते॥

जैसे धौंकी जाती हुई धातुओं का मल नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इन्द्रियों का दोष प्राणायाम से जल जाता है।

योगियाज्ञवल्क्य-
यथा पर्वतधातूनां दोषान् दहति पावकः।
एवमन्तर्गतं चैनं प्राणायामेन दह्यते॥

जैसे अग्नि पर्वत की धातुओं के दोषों को जला देती है उसी प्रकार आन्तरिक मल व पाप प्राणायाम से जला दिया जाता है।

अत्रिवसिष्ठौ-
निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्निः प्रजायते।
अग्नेरापो व्यजायन्त तैरन्तः शुध्यति त्रिभिः॥

प्राणायाम विधि से प्राणों को रोकने पर शरीर में वायु का संग्रह होता है, इससे अग्नि अर्थात् शरीर में गर्मी पैदा होती है तथा इसके बाद जल अर्थात् पसीना आता है। इस प्रकार तीन प्राणायाम करने से वायु, अग्नि और जल के द्वारा आन्तरिक शुद्धि हो जाती है। शरीर व मन निर्मल हो जाते हैं।

विष्णुधर्मोत्तराग्निपुराणयोः-
निरोधाज्जायते वायुस्तस्मादग्निस्ततो जलम्।
त्रिभिः शरीरं सकलं प्राणायामैर्विशुध्यति॥
मनु-
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि विधिवत्कृताः।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः॥ (मनुस्मृति : 6.70)

"ओं भूर्भुवः स्वः" इस प्रकार ओंकार व तीन महाव्याहृतियों के मानसिक उच्चारण के साथ व्यक्ति यदि विधिवत् तीन प्राणायाम भी कर लेता है तो यह उसके लिए परम तप है। न्यूनतम संख्या तीन बतायी है। अभ्यास व सामर्थ्य के अनुसार अधिक करें तो अधिक लाभ होता है।

योगचूडामण्युपनिषद्-
प्राणायामो भवेदेवं पातकेन्धनपावकः।
भवोदधिमहासेतुः प्रोच्यते योगिभिः सदा॥ (108)

प्राणायाम पाप रूपी ईंधन को जला डालने वाली अग्नि है। यह संसार सागर को पार करने का महासेतु है, ऐसा योगी लोगों के द्वारा कहा जाता है।

युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तं प्रपूरयेत्।
युक्तं युक्तं प्रबध्नीयादेवं सिद्धिमवाप्नुयात्।।110।।

प्राणायामाभ्यासी को चाहिए कि युक्तिपूर्वक (उचित रीति से) श्वास को छोड़े, अन्दर भरे व उचित रीति से यथाशक्ति अन्दर रोके। इस प्रकार सावधानी व युक्ति से अभ्यास करने पर प्राणायाम में सफलता मिलती है।

मनु-
प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्।। (मनुस्मृति : 6.72)

प्राणायाम से राग आदि दोषों को जलावे, धारणा से पाप को नष्ट करे, प्रत्याहार से इन्द्रियों के विषयों में होने वाली आसक्ति को नष्ट करे, और ध्यान से.......

अह्ना रात्र्या च यान् जन्तून् हिनस्त्यज्ञानतो यतिः।
तेषां स्नात्वा विशुद्ध्यर्थं प्राणायामान् षडाचरेत्।। (मनुस्मृति : 6.69)

रात-दिन के अन्तराल में अनजाने में चलते-फिरते कृमि-कीट आदि की हिंसा हो जाती है। इस दोष की निवृत्ति के लिए संन्यासी को स्नान करके छह प्राणायाम करने चाहिए।

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात् सत्यं विशिष्यते।।

(मनुस्मृति : 2.83)

एकाक्षर रूप 'ओम्' यह परब्रह्म का वाचक है अर्थात् ईश्वर का निजनाम है। प्राणायाम सबसे बड़ा तप है। सावित्री (गायत्री) मन्त्र से बढकर कोई मंत्र नहीं है। मौन रहने से सत्य बोलना अधिक उत्तम है।

अरुणस्मृतिः पृ. 2130-
अथवा मुच्यते पापात् प्राणायामपरायणः।
प्राणायामैर्दहेत् सर्वं शरीरे यच्च पातकम्।।121।।

प्राणायाम करने वाला व्यक्ति पापों से मुक्त हो जाता है। अतः शरीर में जो

दोष, मल व कल्मष हैं उन्हें प्राणायाम से जला देना चाहिए।

यथा वेगगतो वह्निः शुष्कार्द्रं दहतीन्धनम्।
प्राणायामैस्तथा पापं शुष्कार्द्रं नात्र संशयः॥130॥

प्रचंड हुई अग्नि सूखे-गीले सम्पूर्ण ईधन को जला देती है। उसी प्रकार प्राणायाम छोटे-बड़े सभी दोषों व विकारों को जला देता है इसमें कोई संदेह नहीं है।

बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृतिः-
गायत्री प्राणायाम
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते॥

ओं भूर्भुवः स्वः के साथ शेष गायत्री मंत्र को श्वास रोककर तीन बार मन-मन में बोलें, (धर्मशास्त्रकारों की दृष्टि में) यह प्राणायाम कहलाता है। अर्थात् अन्दर या बाहर श्वास रोककर मन में तीन बार गायत्री मंत्र का उच्चारण करने से एक प्राणायाम सम्पन्न होता है।

बृहद्योगियाज्ञवल्क्यस्मृतिः- **(पृ. 2304) 27 से 34 तक**
प्राणायामशतं कार्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
उपपातकजातीनामनादिष्टस्य चैव हि॥ **बृह. 8. 36 (पृ. 2304)**

सभी पापों के प्रायश्चित्त के रूप में 100 प्राणायाम करने चाहिए। इससे भविष्य में मन में पाप करने का संकल्प नहीं आता है। धर्मशास्त्रों में जो उपपातक (छोटे पाप) गिनाए हैं उनके प्रायश्चित्त के लिए भी मनुष्य को 100 प्राणायाम करने चाहिए। इससे मन शुद्ध होता है और भविष्य में पाप करने से विमुख हो जाता है। धर्मशास्त्रों में जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं बताया है उनके प्रायश्चित्त के रूप में व्यक्ति को 100 प्राणायाम करने चाहिए जिससे पुनः उन पापों की ओर प्रवृत्ति न हो।

"साभार-स्वाध्याय संदोह से"

प्राणायाम हेतु कुछ नियम

- प्राणायाम शुद्ध सात्त्विक निर्मल स्थान पर करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो जल के समीप बैठकर अभ्यास करें।
- शहरों में जहाँ प्रदूषण का अधिक प्रभाव होता है, उस स्थान को प्राणायाम से पहले घृत एवं गुग्गुलु द्वारा सुगन्धित कर लें या घृत का दीपक जलायें।
- प्राणायाम के लिए सिद्धासन/सुखासन या पद्मासन में मेरुदण्ड को सीधा रखकर बैठें। बैठने के लिए जिस आसन का प्रयोग करते हैं, वह विद्युत् का कुचालक होना चाहिए, जैसे कम्बल या कुशासन आदि। जो लोग जमीन पर नहीं बैठ सकते वे कुर्सी पर बैठकर भी प्राणायाम कर सकते हैं।
- श्वास सदा नासिका से ही लेना चाहिए। इससे श्वास फिल्टर होकर अन्दर जाता है। दिन में भी श्वास नासिका से ही लेना चाहिए। इससे शरीर का तापमान भी इडा (चन्द्र), पिंगला (सूर्य) नाडी के द्वारा सुव्यवस्थित रहता है और विजातीय तत्त्व नासा-छिद्रों मे ही रुक जाते हैं।
- प्राणायाम करते समय मन शान्त एवं प्रसन्न होना चाहिए। वैसे प्राणायाम से भी मन स्वतः शान्त, प्रसन्न तथा एकाग्र हो जाता है।
- प्राणायाम करते हुए थकान अनुभव हो तो बीच-बीच में थोड़ा सूक्ष्म व्यायाम या विश्राम कर लेना चाहिए।
- प्राणायाम के दीर्घ अभ्यास के लिए संयम व सदाचार का पालन करें। भोजन सात्त्विक एवं चिकनाई-युक्त हो। दूध, घृत, बादाम एवं फलों का उचित मात्रा में प्रयोग हितकर है।
- प्राणायाम में श्वास को हठपूर्वक नहीं रोकना चाहिए। प्राणायाम करने के लिए श्वास अन्दर लेना 'पूरक', श्वास को अन्दर रोककर रखना 'कुम्भक', श्वास को बाहर निकालना 'रेचक' और श्वास को बाहर ही रोक कर रखना 'बाह्यकुम्भक' कहलाता हैं।
- प्राणायाम का अर्थ सिर्फ पूरक, कुम्भक एवं रेचक ही नहीं, वरन् श्वास और प्राणों की गति को नियन्त्रित और सन्तुलित करते हुए मन को भी स्थिर एवं एकाग्र करने का अभ्यास करना है।

- प्राणायाम से पूर्व कम से कम तीन बार 'ओ३म्' का लम्बा उच्चारण करना, प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए गायत्री, महामृत्युंजय या अन्य वैदिक मंत्रों का विधिपूर्वक उच्चारण या जाप आध्यात्मिक दृष्टि से लाभप्रद है।
- प्राणायाम करते समय मुख, आँख, नाक आदि अंगों पर किसी प्रकार तनाव न लाकर सहजावस्था में रखना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास-काल में ग्रीवा, मेरुदण्ड, वक्ष, कटि को सदा सीधा रखकर बैटें, तभी अभ्यास यथाविधि तथा फलप्रद होगा।
- प्राणायाम का अभ्यास धीरे-धीरे बिना किसी उतावली के, धैर्य के साथ, सावधानी से करना चाहिए।

यथा सिंहो गजो व्याघ्रो भवेद् वश्यः शनैः शनैः।
तथैव वश्यते वायुरन्यथा हन्ति साधकम्॥

जैसे सिंह, हाथी या बाघ जैसे हिंसक जंगली प्राणियों को बहुत धीरे-धीरे अति सावधानी से वश में किया जाता है। उतावलापन करने से ये प्राणी हमला कर हानि भी पहुँचा सकते हैं। इसी प्रकार प्राणायाम को धीरे-धीरे बढ़ाते हुए प्राण पर नियंत्रण करना चाहिए अन्यथा साधक को नुकसान हो सकता है।

- सभी प्रकार के प्राणायामों के अभ्यास से पूर्ण लाभ उठाने के लिए गीता का निम्नांकित श्लोक कण्ठस्थ करके स्मरण करते हुए व्यवहार में लायें:

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

अर्थात्, जिस व्यक्ति का आहार-विहार ठीक है, जिस व्यक्ति की सांसारिक कार्यों के करने की निश्चित दिनचर्या है और जिस व्यक्ति के सोने-जागने का समय भी निश्चित है, ऐसा व्यक्ति ही योग कर सकता है, तथा उसका योगानुष्ठान दुःखों का नाशक बनता है, अन्यों का नहीं।

- प्राणायाम शौचादि नित्यकर्म से निवृत्त होकर करना चाहिए। यदि किसी को कब्ज़ रहता हो तो रात्रि में भोजन के उपरांत आंवला एवं घृतकुमारी (ऐलो वेरा) का जूस पीना चाहिए। इससे कब्ज़ नहीं होगा।
- प्राणायाम स्नान करके करते हैं तो अधिक आनन्द, प्रसन्नता व पवित्रता का अनुभव होता है। यदि प्राणायाम के बाद स्नान करना हो तो 10-15 मिनट बाद स्नान कर सकते हैं। साथ ही प्राणायाम करने के 10-15 मिनट बाद प्रातः जूस, अंकुरित अन्न या अन्य खाद्य पदार्थ ले सकते हैं।

- प्राणायाम के तुरंत बाद चाय, कॉफी या अन्य मादक, उत्तेजक या नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए।

- प्राणायाम के बाद दूध, दही, छाछ, लस्सी, फलों का जूस, हरी सब्जियों का जूस, पपीता, सेब, अमरूद या चेरी आदि फलों का सेवन आरोग्यदायक है।

- अंकुरित अन्न, दलिया या अन्य स्थानीय आहार जो पचने में भारी न हो, प्राणायाम के बाद लेना चाहिए। प्रथम बात तो परांठे, हलवा या अन्य नाश्ते से बचें तो ही श्रेष्ठ है और यदि परांठा आदि खाने का बहुत दिल करे तो स्वस्थ व्यक्ति सप्ताह में एक या अधिकतम दो बार ही भारी नाश्ता ले। रोगी व्यक्ति को भारी भोजन से परहेज़ करना चाहिए।

- प्रतिदिन एक जैसा नाश्ता उचित नहीं। शरीर के सम्पूर्ण पोषण के लिये सप्ताह भर के क्रम में नाश्ते के लिये किसी दिन अंकुरित अन्न तो कभी दलिया, कभी दूध, कभी केवल फल, कभी केवल जूस या दही, छाछ आदि लेना चाहिए। इससे शरीर को सम्पूर्ण पोषण भी मिलेगा और आपको नाश्ते में बोरियत नहीं लगेगी। परिवर्तन जीवन का सिद्धान्त है और हमारी चाहत भी।

- योगाभ्यासी का भोजन सात्विक होना चाहिए। हरी सब्जियों का प्रयोग अधिक मात्रा में करें, अन्न कम लें, दालें छिलके सहित प्रयोग करें। ऋतभुक्, मितभुक् व हितभुक् बनें। शाकाहार ही श्रेष्ठ, सम्पूर्ण व वैज्ञानिक भोजन है।

- सुबह उठकर पानी पीना, ठंडे पानी से आंखों को साफ करना, पेट व नेत्रों के लिये अत्यंत हितकर है।

- नाश्ते व दोपहर के भोजन के बीच एक बार तथा दोपहर व सायंकाल के भोजन के बीच में थोड़ा-थोड़ा करके जल अवश्य ही पीना चाहिए। इससे हम पाचन तन्त्र, मूत्रसंस्थान, मोटापा व कोलेस्ट्रॉल आदि बहुत से रोगों से बच जाते हैं।

- गर्भवती महिलाओं को कपालभाति, बाह्य प्राणायाम एवं अग्निसार क्रिया को छोड़कर शेष प्राणायाम व बटरफ्लाई आदि सूक्ष्म व्यायाम धीरे-धीरे करना चाहिए। माहवारी के समय माताओं को बाह्य प्राणायाम व कठिन आसन नहीं करने चाहिए। सूक्ष्म व्यायाम व बाह्य प्राणायाम को छोड़कर शेष सभी

प्राणायाम माहवारी के समय भी नियमित रूप से अवश्य करें। गर्भवती महिलाओं को सर्वांगासन, हलासन आदि कठिन आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिए।

- उच्च रक्तचाप व हृदयरोग से पीड़ित व्यक्ति को सभी प्राणायामों का अभ्यास धीरे-धीरे अवश्य करना चाहिए। इनके लिये प्राणायाम ही एक-मात्र उपचार है। बस सावधानी इतनी ही है कि भस्त्रिका, कपालभाति व अनुलोम-विलोम आदि प्राणायाम धीरे-धीरे करें, अधिक बल का प्रयोग न करें। कुछ लोग अज्ञानवश यह भ्रम फैलाते हैं कि उच्च रक्तचाप व हृदयरोग से पीड़ित व्यक्ति प्राणायाम न करें। यह नितान्त अज्ञान है।
- किसी भी ऑपरेशन के बाद कपालभाति प्राणायाम 4 से 6 माह बाद करना चाहिए। हृदयरोग में बाइपास या एञ्जियोप्लास्टी के एक सप्ताह बाद ही अनुलोम-विलोम, भ्रामरी व उद्गीथ प्राणायाम, सूक्ष्म व्यायाम व शवासन का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। इससे उनको शीघ्र लाभ मिलेगा।

प्राणायाम में उपयोगी बन्धत्रय

योगासन एवं प्राणायाम द्वारा हमारे शरीर से जिस शक्ति का बहिर्गमन होता है, उसे हम बन्धों के द्वारा रोककर अन्तर्मुखी करते हैं। बन्ध का अर्थ ही है बाँधना, रोकना। ये बन्ध प्राणायाम में अत्यन्त सहायक हैं। बिना बन्धों के प्राणायाम अधूरे हैं। इन बन्धों का क्रमशः वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

जालन्धर बन्ध

पद्मासन या सिद्धासन में सीधे बैठकर श्वास को अन्दर भर लें। दोनों हाथ घुटनों पर टिके हुए हों। अब ठोड़ी को थोड़ा नीचे झुकाते हुए कण्ठकूप में लगाना 'जालन्धर बन्ध' कहलाता है। दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर करें। छाती आगे की ओर तनी हुई होगी। यह बन्ध कण्ठस्थान के नाड़ी-जाल को बाँधे रखता है।

लाभ

- कण्ठ मधुर, सुरीला और आकर्षक होता है।
- कण्ठ के संकोच द्वारा इड़ा, पिंगला नाड़ियों के बन्द होने पर प्राण का सुषुम्णा में प्रवेश होता है।
- गले के सभी रोगों में लाभप्रद है। थायरॉयड, टॉन्सिल आदि रोगों में अभ्यसनीय है।
- विशुद्धि-चक्र की जागृति करता है।

उड्डीयान बन्ध

प्राण जिस क्रिया से उठकर, उत्थित होकर सुषुम्णा में प्रविष्ट हो जाये उसे 'उड्डीयान बन्ध' कहते हैं। खड़े होकर दोनों हाथों को सहज भाव से दोनों घुटनों पर रखिए। श्वास बाहर निकालकर पेट को ढीला छोड़ें। जालन्धर बन्ध लगाते हुए छाती को थोड़ा ऊपर की ओर उठायें। पेट को कमर से लगा दें। यथाशक्ति करने के पश्चात् पुनः श्वास लेकर पूर्ववत् दोहरायें। प्रारम्भ में तीन बार करना पर्याप्त है। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

इसी प्रकार पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर भी इस बन्ध को लगायें। (पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र: सं० 1 देखें।)

लाभ

- पेट-सम्बन्धी समस्त रोगों को दूर करता है।

❖ प्राणों को जागृत कर मणिपूर चक्र का शोधन करता है।

मूलबन्ध

सिद्धासन या पद्मासन में बैठकर बाह्य या आभ्यन्तर कुम्भक करते हुए, गुदाभाग एवं मूत्रेन्द्रिय को ऊपर की ओर आकर्षित करें। इस बन्ध में नाभि के नीचेवाला हिस्सा खिंच जायेगा। यह बन्ध बाह्यकुम्भक के साथ लगाने में सुविधा रहती है। वैसे योगाभ्यासी साधक इसे कई-कई घण्टों तक सहजावस्था में भी लगाये रखते हैं। दीर्घ अभ्यास किसी के सान्निध्य में करना उचित है।

लाभ

❖ इससे अपान का ऊर्ध्वगमन होकर प्राण के साथ एकता होती है। इस प्रकार यह बन्ध मूलाधार चक्र को जागृत करता है और कुण्डलिनी-जागरण में अत्यन्त सहायक है।
❖ कोष्ठबद्धता और बवासीर को दूर करने तथा जठराग्नि को तेज करने के लिए यह बन्ध अति उत्तम है।
❖ वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाता है, साधक को ऊर्ध्वरेता बनाता है। अत: ब्रह्मचर्य के लिए यह बन्ध महत्त्वपूर्ण है।

महाबन्ध

पद्मासन आदि किसी भी एक ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर तीनों बन्धों को एक साथ लगाना 'महाबन्ध' कहलाता है। इससे वे सभी लाभ मिल जाते है, जो पूर्वनिर्दिष्ट हैं। कुम्भक में ये तीनों बन्ध लगते हैं।

लाभ

❖ प्राण ऊर्ध्वगामी होता है।
❖ वीर्य की शुद्धि और बल की वृद्धि होती है।
❖ महाबन्ध से इडा, पिंगला और सुषुम्णा का संगम प्राप्त होता है।

प्राणायाम की सम्पूर्ण आठ प्रक्रियाएँ

यद्यपि प्राणायाम की विभिन्न विधियाँ शास्त्रों में वर्णित हैं और प्रत्येक प्राणायाम का अपना एक विशेष महत्त्व है, तथापि प्रतिदिन सभी प्राणायामों का अभ्यास नहीं किया जा सकता। अतः हमने गुरुओं की कृपा एवं अपने अनुभव के आधार पर प्राणायाम की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया को विशिष्ट वैज्ञानिक रीति एवं आध्यात्मिक विधि से आठ प्रक्रियाओं में निबद्ध किया है। प्राणायाम के इस सम्पूर्ण अभ्यास को करने से जो मुख्य लाभ होते हैं, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं:

- वात, पित्त और कफ, इन तीनों दोषों का संतुलन होता है।
- पाचनतन्त्र पूर्ण स्वस्थ हो जाता है तथा समस्त उदररोग दूर होते हैं।
- हृदय, फेफड़े एवं मस्तिष्क-सम्बन्धी समस्त रोग दूर होते हैं।
- मोटापा, मधुमेह, कॉलेस्ट्रॉल, कब्ज़, गैस, अम्लपित्त, श्वास रोग, एलर्जी, माइग्रेन, रक्तचाप, किडनी के रोग, पुरुष और स्त्रियों के समस्त यौन रोग, सामान्य रोगों से कैन्सर तक सभी साध्य-असाध्य रोग दूर होते हैं।
- रोग-प्रतिरोधक क्षमता अत्यधिक विकसित हो जाती है।
- वंशानुगत डायबिटीज़ एवं हृदयरोग आदि से बचा जा सकता है।
- बालों का झड़ना और सफेद होना, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ना, नेत्रज्योति के विकार, स्मृति-दौर्बल्य आदि से बचा जा सकता है, अर्थात् बुढ़ापा देर से आयेगा तथा आयु बढ़ेगी।
- मुख पर आभा, ओज, तेज एवं शान्ति आयेगी।
- चक्रों के शोधन, भेदन तथा जागरण द्वारा आध्यात्मिक शक्ति (कुण्डलिनी-जागरण) की प्राप्ति होगी।
- मन अत्यन्त स्थिर, शान्त और प्रसन्न तथा उत्साहित होगा, डिप्रेशन आदि रोगों से बचा जा सकेगा।
- ध्यान स्वतः लगने लगेगा तथा घण्टों तक ध्यान का अभ्यास करने का सामर्थ्य प्राप्त होगा।
- स्थूल एवं सूक्ष्म देह के समस्त रोग और काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि दोष नष्ट होते हैं।
- शरीरगत समस्त विकार, विजातीय तत्त्व, टाक्सिन्स नष्ट हो जाते हैं।

* नकारात्मक विचार समाप्त होते हैं तथा प्राणायाम का अभ्यास करने वाला व्यक्ति सदा सकारात्मक विचार, ऊर्जा एवं आत्मविश्वास से भरा हुआ होता है।

प्रथम प्रक्रिया : भस्त्रिका प्राणायाम

किसी ध्यानोपयोगी आसन में सुविधानुसार बैठकर दोनों नासिकाओं से श्वास को पूरा अन्दर डायाफ्राम तक भरना तथा बाहर सहजता के साथ छोड़ना 'भस्त्रिका प्राणायाम' कहलाता है।

भस्त्रिका के समय शिवसंकल्प

भस्त्रिका प्राणायाम में श्वास को अन्दर भरते हुए मन में विचार (संकल्प) करना चाहिए कि ब्रह्माण्ड में विद्यमान दिव्य शक्ति, ऊर्जा, पवित्रता, शान्ति और आनन्द आदि जो भी शुभ है, वह प्राण के साथ मेरे देह में प्रविष्ट हो रहा है। मैं दिव्य शक्तियों से ओत-प्रोत हो रहा हूँ। इस प्रकार दिव्य संकल्प के साथ किया हुआ प्राणायाम विशेष लाभप्रद होता है।

भस्त्रिका प्राणायाम का समय

ढाई सेकण्ड में श्वास अन्दर लेना एवं ढाई सेकण्ड में श्वास को एक लय के साथ बाहर छोड़ना। इस प्रकार बिना रुके एक मिनट में 12 बार भस्त्रिका प्राणायाम होगा। एक आवृत्ति में पाँच मिनट करना चाहिए। प्रारम्भ में थोड़ा रुकना पड़ सकता है। लगभग एक सप्ताह में निरन्तर पाँच मिनट बिना व्यवधान के अभ्यास हो जाता है।

स्वस्थ एवं सामान्यतया रोगग्रस्त व्यक्तियों को प्रतिदिन 5 मिनट भस्त्रिका का अभ्यास करना चाहिए। कैंसर, लंग फाइब्रोसिस, मस्क्यूलर डिस्ट्रॉफी, एम.एस., एस.एल.ई. एवं अन्य असाध्य रोगों में 10 मिनट तक अभ्यास करना चाहिए। भस्त्रिका एक मिनट में 12 बार, इसी प्रकार पाँच मिनट में 60 बार अभ्यास हो जाता है। कैंसर आदि असाध्य रोगों में 2 आवृत्ति करने पर 120 बार प्राणायाम होता है। सामान्यत: प्राणायाम खाली पेट किया जाये तो उत्तम है। किसी कारणवश प्रात: प्राणायाम नहीं कर पायें तो दोपहर के खाने के 5 घंटे बाद भी प्राणायाम किया जा सकता है। असाध्य रोगी प्रात: सायं दोनों समय प्राणायाम करें तो शीघ्र ही अधिक लाभ होगा।

विशेष

* जिनको उच्च रक्तचाप तथा हृदयरोग हो, उन्हें तीव्र गति से भस्त्रिका नहीं करनी चाहिए।

- इस प्राणायामं को करते समय जब श्वास को अन्दर भरें, तब पेट नहीं फुलाना चाहिए। श्वास डायाफ्राम तक भरें, इससे पेट नहीं फूलेगा, पसलियों तक छाती ही फूलेगी। डायाफ़्रैग्मेटिक डीप ब्रीदिंग का नाम ही भस्त्रिका है।
- ग्रीष्म ऋतु में धीमी गति से करें।
- कफ की अधिकता या साइनस आदि रोगों के कारण जिनके दोनों नासाछिद्र ठीक से खुले हुए नहीं होते, उन लोगों को पहले दायें स्वर को बन्द करके बायें से रेचक और पूरक करना चाहिए। फिर बायें को बन्द करके दायें से यथाशक्ति मन्द, मध्यम या तीव्र गति से रेचक तथा पूरक करना चाहिए। फिर, अन्त में दोनों स्वरों इडा एवं पिंगला से रेचक पूरक करते हुए भस्त्रिका प्राणयाम करें। इस प्राणायाम को पाँच मिनट तक प्रतिदिन अवश्य करें। प्राणायाम की क्रियाओं को करते समय आँखों को बन्द रखें और मन में प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ 'ओ३म्' का मानसिक रूप से चिन्तन और मनन करना चाहिए।

लाभ

- सर्दी-जुकाम, एलर्जी, श्वासरोग, दमा, पुराना नजला, साइनस आदि समस्त कफ रोग दूर होते हैं। फेफड़े सबल बनते हैं तथा हृदय और मस्तिष्क को भी शुद्ध प्राणवायु मिलने से आरोग्य-लाभ होता है।
- थायरॉयड एवं टॉन्सिल आदि गले के समस्त रोग दूर होते हैं।
- त्रिदोष सम होते हैं। रक्त परिशुद्ध होता है तथा शरीर के विषाक्त, विजातीय द्रव्यों का निष्कासन होता है।
- प्राण और मन स्थिर होते हैं। यह प्राणोत्थान और कुण्डलिनी-जागरण में सहायक है।

द्वितीय प्रक्रिया : कपालभाति प्राणायाम

कपाल, अर्थात् मस्तिष्क और भाति का अर्थ होता है- दीप्ति, आभा, तेज, प्रकाश आदि। जिस प्राणायाम के करने से मस्तिष्क (माथे) पर आभा, ओज एवं तेज बढ़ता हो, वह प्राणायाम है- कपालभाति। इस प्राणायाम की विधि भस्त्रिका से थोड़ी अलग है। भस्त्रिका में रेचक एवं पूरक में समानरूप से श्वास-प्रश्वास पर दबाव डालते हैं, जबकि कपालभाति में मात्र रेचक, अर्थात् श्वास को शक्तिपूर्वक बाहर छोड़ने में ही पूरा ध्यान दिया जाता है। श्वास को भरने के लिए प्रयत्न नहीं करते; अपितु सहज रूप से जितना श्वास अन्दर चला जाता है, जाने देते हैं, पूरी एकाग्रता श्वास को बाहर छोड़ने में ही होती है। ऐसा करते हुए स्वाभाविक रूप

से पेट में भी आकुंचन और प्रसारण की क्रिया होती है तथा मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर चक्रों पर विशेष बल पड़ता है।

कपालभाति के समय शिवसंकल्प

कपालभाति प्राणायाम को करते समय मन में ऐसा विचार करना चाहिए कि जैसे ही मैं श्वास को बाहर छोड़ रहा हूँ, इस प्रश्वास के साथ मेरे शरीर के समस्त रोग बाहर निकल रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं। जिसको जो शारीरिक रोग हो, उस दोष या विकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि के बाहर छोड़ने की भावना करते हुए रेचक करना चाहिए। इस प्रकार रोग के नष्ट होने का विचार श्वास छोड़ते वक्त करने का भी विशेष लाभ होता है।

कपालभाति प्राणायाम का समय

एक सेकण्ड में एक बार श्वास को लय के साथ छोड़ना एवं सहज रूप से धारण करना चाहिए। बिना रुके एक मिनट में 60 बार तथा पाँच मिनट में 300 बार कपालभाति प्राणायाम होता है। अत्यधिक बीमार एवं कमजोर व्यक्ति प्रारम्भ में 2-3 मिनट में ही थक जाते हैं। परन्तु 10-15 दिन में प्रत्येक व्यक्ति 5 मिनट निरन्तर कपालभाति करने का सामर्थ्य अर्जित कर लेता है। कपालभाति की एक आवृत्ति 5 मिनट की अवश्य होनी चाहिए। इससे कम करने पर पूर्ण लाभ की प्राप्ति नहीं होती। लम्बे समय तक कपालभाति प्राणायाम करते-करते सामर्थ्य बढ़ने एवं अभ्यास के परिपक्व होने पर व्यक्ति 15 मिनट तक भी कपालभाति कर सकता है। स्वस्थ एवं सामान्यतया रोगग्रस्त व्यक्ति को कपालभाति 15 मिनट तक करना चाहिए। 15 मिनट में 3 आवृत्तियों में 900 बार कपालभाति हो जाता है।

कैंसर, एड्स, हेपेटाइटिस, सफेद दाग, सोरायसिस, अत्यधिक मोटापा, इन्फर्टिलिटी, गर्भाशय, ओवरी, ब्रेस्ट या शरीर में कहीं भी गांठ होने पर तथा एम. एस. व एस. एल. ई. जैसे असाध्य रोगों से पीड़ित रोगी आधा घंटा कपालभाति करें। असाध्य रोगी प्रातः-सायं दोनों समय कपालभाति आधा-आधा घंटा करें। स्वस्थ एवं सामान्य रोगग्रस्त व्यक्ति को दिन में एक बार प्राणायाम करना ही पर्याप्त है।

लाभ

- मस्तिष्क और मुखमण्डल पर ओज, तेज, आभा तथा सौन्दर्य बढ़ता है।
- समस्त कफरोग, दमा, श्वास, एलर्जी, साइनस आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।

- हृदय, फेफड़ों एवं मस्तिष्क के समस्त रोग दूर होते हैं।
- मोटापा, मधुमेह, गैस, कब्ज़, अम्लपित्त, किडनी तथा प्रॉस्टेट से सम्बन्धित सभी रोग निश्चित रूप से दूर होते हैं।
- कब्ज़ जैसा खतरनाक रोग इस प्राणायाम के नियमित रूप से लगभग 5 मिनट तक प्रतिदिन करने से मिट जाता है। मधुमेह बिना औषधि के नियंत्रित किया जा सकता है तथा पेट आदि का बढ़ा हुआ भार एक माह में 4 से 6 किलो तक कम किया जा सकता है। हृदय की धमनियों (arteries) में आये हुए अवरोध (blockage) खुल जाते हैं।
- मन स्थिर, शान्त तथा प्रसन्न रहता है। नकारात्मक विचार नष्ट हो जाते हैं, जिससे डिप्रेशन आदि रोगों से छुटकारा मिलता है।
- चक्रों का शोधन तथा मूलाधार-चक्र से सहस्रार-चक्र पर्यन्त समस्त चक्रों में एक दिव्य शक्ति का संचरण होने लगता है।
- इस प्राणायाम के करने से आमाशय, अग्न्याशय (पेन्क्रियाज़), यकृत्, प्लीहा, आँत, प्रॉस्टेट एवं किडनी का आरोग्य विशेष रूप से बढ़ता है। पेट के लिए बहुत से आसन करने पर भी जो लाभ नहीं हो पाता, मात्र इस प्राणायाम के करने से ही सब आसनों से भी अधिक लाभ हो जाता है। दुर्बल आँतों को सबल बनाने के लिए भी यह प्राणायाम सर्वोत्तम है।

तृतीय प्रक्रिया : बाह्य प्राणायाम (त्रिबन्ध के साथ)

विधि :

- सिद्धासन या पद्मासन में विधिपूर्वक बैठ कर श्वास को एक ही बार में यथाशक्ति बाहर निकाल दें।
- श्वास बाहर निकालकर मूलबन्ध, उड्डीयान बन्ध एवं जालन्धर बन्ध लगाकर श्वास को यथाशक्ति बाहर ही रोककर रखें।
- जब श्वास लेने की इच्छा हो, तब बन्धों को हटाते हुए धीरे-धीरे श्वास लें।
- श्वास भीतर लेकर उसे बिना रोके ही पुनः पूर्ववत् श्वसन-क्रिया द्वारा बाहर निकाल दें।

बाह्य प्राणायाम के समय शिवसंकल्प

इस प्राणायाम में भी उक्त कपालभाति के समान श्वास को बाहर निकालते हुए समस्त विकारों, दोषों को भी बाहर निकाला जा रहा है, इस प्रकार की

मानसिक चिन्तन-धारा बहनी चाहिए। विचार-शक्ति जितनी अधिक प्रबल होगी, समस्त कष्ट उतनी ही प्रबलता से दूर होंगे, यह निश्चित जानें। मन का शिव-संकल्प से युक्त होना हर प्रकार की आधि-व्याधि का संहारक और शीघ्र सुफलदायक होता है।

बाह्य प्राणायाम का समय

3 से 5 सेकण्ड में श्वास को सहजता से पूरा अन्दर भरना एवं 3 से 5 सेकण्ड में ही सहजता से श्वास को बाहर छोड़कर बाहर ही 10 से 15 सेकण्ड रोककर रखना एवं पुन: 3 से 5 सेकण्ड में श्वास को अन्दर भरना एवं बाहर छोड़कर बाह्य प्राणायाम करना, इस प्रकार लगभग 20 से 25 सेकण्ड में बाह्य प्राणायाम पूरा हो जाता है। एक के बाद दूसरा बाह्य प्राणायाम बिना रुके लगातार करें, तो उत्तम है। यदि प्रारम्भ में दो प्राणायामों के बीच 1-2 सामान्य श्वास लेने पड़ें तो ले सकते हैं। 2 मिनट में सामान्यत: 5 बार बाह्य प्राणायाम आराम से हो जाता है और 5 बार बाह्य प्राणायाम करना सामान्यत: पर्याप्त है। गुदाभ्रंश, पाइल्स, फिशर, फिस्टुला, योनिभ्रंश, बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र एवं यौन रोगों से पीड़ित व्यक्ति इसका 11 बार तक अभ्यास कर सकते हैं। कुण्डलिनी जागरण के इच्छुक साधक एवं ऊर्ध्वरेता होने की इच्छा रखने वाले साधक इसका अधिकतम 21 बार तक अभ्यास कर सकते हैं।

लाभ

यह हानिरहित प्राणायाम है। इससे मन की चंचलता दूर होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। उदर रोगों में लाभप्रद है। बुद्धि सूक्ष्म और तीव्र होती है। शरीर का शोधक है। वीर्य की ऊर्ध्व गति करके स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि धातु-विकारों की निवृत्ति करता है। बाह्य प्राणायाम करने से पेट के सभी अवयवों पर विशेष बल पड़ता है तथा प्रारम्भ में पेट के कमजोर या रोगग्रस्त भाग में हल्का दर्द का भी अनुभव होता है। अत: पेट को विश्राम तथा आरोग्य देने के लिए त्रिबन्ध-पूर्वक यह प्राणायाम करना चाहिए।

चतुर्थ प्रक्रिया : उज्जायी प्राणायाम

इस प्राणायाम में पूरक करते हुए गले को सिकोड़ते हैं और जब गले को सिकोड़कर श्वास अन्दर भरते हैं तब जैसे खर्राटे लेते समय गले से आवाज होती है, वैसे ही इसमें पूरक करते हुए कण्ठ से ध्वनि होती है। ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर दोनों नासिकाओं से वायु अन्दर खींचिए। कण्ठ को थोड़ा संकुचित करने से वायु का स्पर्श गले में अनुभव होगा। हवा का घर्षण नाक में नहीं होना

चाहिए। कण्ठ में घर्षण होने से एक ध्वनि उत्पन्न होगी। प्रारम्भ में कुम्भक का प्रयोग न करके केवल पूरक-रेचक का ही अभ्यास करना चाहिए। पूरक के बाद धीरे-धीरे कुम्भक का समय पूरक जितना तथा कुछ दिनों के अभ्यास के बाद कुम्भक का समय पूरक से दुगुना कर दीजिए। कुम्भक 10 सेकण्ड से ज्यादा करना हो तो जालन्धर-बन्ध और मूलबन्ध भी लगायें। इस प्राणायाम में सदैव दाईं नासिका को बन्द करके बाईं नासिका से ही रेचक करना चाहिए।

लाभ

जो साल भर सर्दी, खाँसी, जुकाम से पीड़ित रहते हैं, तथा जिनको थायरॉइड, स्नोरिंग, स्लीपएप्निया, हृदयरोग, अस्थमा, फुफ्फुस एवं कंठविकार, टॉन्सिल, अनिद्रा, मानसिक तनाव और रक्तचाप, अजीर्ण, आमवात, जलोदर, क्षय, ज्वर, प्लीहा आदि रोग हों, उनके लिए यह लाभप्रद है। गले को ठीक, नीरोग एवं मधुर बनाने हेतु इसका नियमित अभ्यास करना चाहिए। कुण्डलिनी-जागरण, अजपा-जप, ध्यान आदि के लिए उत्तम प्राणायाम है। इससे बच्चों का तुतलाना भी ठीक होता है।

पंचम प्रक्रिया : अनुलोम-विलोम प्राणायाम

नासिकाओं को बन्द करने की विधि

दायें हाथ को उठाकर दायें हाथ के अंगुष्ठ के द्वारा दायाँ स्वर (पिंगला नाड़ी) तथा अनामिका एवं मध्यमा अंगुलियों के द्वारा बायाँ स्वर बन्द करना चाहिए। हाथ की हथेली को नासिका के सामने न रखकर थोड़ा पार्श्वभाग में रखना चाहिए।

(पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र-सं० 2 और 3 देखें।)

इड़ा नाड़ी (वाम स्वर) चूँकि सोम, चन्द्रशक्ति या शान्ति का प्रतीक है, इसलिए नाड़ी-शोधन हेतु अनुलोम-विलोम प्राणायाम को बाईं नासिका से प्रारम्भ करते हैं। अंगुष्ठ के माध्यम से दाहिनी नासिका को बन्द करके बाईं नाक से श्वास धीरे-धीरे अन्दर भरना चाहिए। श्वास पूरा अन्दर भरने पर, अनामिका एवं मध्यमा से वाम स्वर को बन्द करके दाहिनी नाक से पूरा श्वास बाहर छोड़ देना चाहिए। धीरे-धीरे श्वास-प्रश्वास की गति मध्यम और फिर तीव्र करनी चाहिए। तीव्र गति से पूरी शक्ति के साथ श्वास अन्दर भरें और बाहर निकालें एवं अपनी शक्ति के अनुसार श्वास-प्रश्वास के साथ गति मन्द, मध्यम और तीव्र करें। तीव्र गति से पूरक, रेचक करने से प्राण की तेज ध्वनि होती हैं। श्वास पूरा बाहर निकलने पर वाम स्वर को बन्द रखते हुए ही दाईं नाक से श्वास पूरा भरकर बाईं नासिका से बाहर छोड़ना चाहिए।

यह एक प्रक्रिया पूरी हुई। इस प्रकार इस विधि को सतत करते रहना, अर्थात् बाईं नासिका से श्वास लेकर दाएँ से बाहर छोड़ देना, फिर दाएँ से लेकर बाईं ओर से श्वास को बाहर छोड़ देना। इस क्रम को लगभग एक मिनट तक करने पर थकान होने लगती है। थकान होने पर बीच में थोड़ा विश्राम करके, थकान दूर होने पर पुनः प्राणायाम करें। इस प्रकार इस प्राणायाम को तीन मिनट से प्रारम्भ करके दस मिनट तक किया जा सकता है। कुछ दिन तक नियमित अभ्यास करने से साधक का सामर्थ्य बढ़ने लगता है, और लगभग एक सप्ताह में वह बिना रुके पाँच मिनट तक इस प्राणायाम को करने लगता है।

अनुलोम-विलोम के निरन्तर अभ्यास से मूलाधार-चक्र में सन्निहित शक्ति का जागरण होने लगता है। इसे ही वेदों में 'ऊर्ध्वरेतस्' होना और अर्वाचीन योग की भाषा में कुण्डलिनी-जागरण कहा जाता है। इस प्राणायाम को करते समय प्रत्येक श्वास-प्रश्वास के साथ 'ओ३म्' का मानसिक रूप से चिन्तन और मनन भी करते रहना चाहिए। ऐसा करने से मन ध्यान की उन्नत अवस्था में अवस्थित हो जाता है।

अनुलोम-विलोम करते समय शिवसंकल्प

इस प्राणायाम को करते समय मन में विचार करें कि इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में श्वास का घर्षण और मन्थन होने से सुषुम्णा नाड़ी जागृत हो रही है। अष्ट चक्रों से सहस्रार-चक्र पर्यन्त एक दिव्य ज्योति का ऊर्ध्वस्फुरण हो रहा है।

मेरा पूरा देह दिव्य आलोक से देदीप्यमान हो रहा है। चित्र-संख्या 16 के अनुसार शरीर के बाहर और भीतर दिव्य आलोक, ज्योति एवं शक्ति का ध्यान करते हुए 'ओं खं ब्रह्म' का साक्षात्कार करें। यह विचार करें कि विश्वनियन्ता परमेश्वर अपनी दिव्यशक्ति, दिव्यज्ञान से मुझे ओतप्रोत कर रहा है। 'शक्तिपात' की दीक्षा से स्वयं को दीक्षित करें। शक्ति के लिए गुरु मात्र प्रेरक है, गुरु तो मात्र दिव्य संवेदनाओं से जोड़ता है। वास्तव में 'शक्तिपात' शक्ति के असीम सिन्धु ओम् परमेश्वर करते हैं। इस प्रकार दिव्य संवेदनाओं से ओतप्रोत होकर किये हुए इस अनुलोम-विलोम प्राणायाम से विशेष शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक लाभ मिलेगा। मूलाधार-चक्र से स्वतः एक ज्योति स्फुरित होगी, कुण्डलिनी-जागरण होगा, आप ऊर्ध्वरेता बनेंगे और 'शक्तिपात' की दीक्षा में स्वतः दीक्षित हो जायेंगे।

अनुलोम-विलोम प्राणायाम का समय

बाईं नासिका से लगभग ढाई सेकण्ड में श्वास लय के साथ भरना एवं बिना

रोके दाईं नासिका से लगभग ढाई सेकण्ड में श्वास को बाहर छोड़ देना तथा दाईं से छोड़ने के तुरन्त बाद दाईं से सहज रूप से ढाई सेकण्ड में श्वास लेना एवं बिना श्वास को रोके बाईं से लगभग ढाई सेकण्ड में ही श्वास को एक लय के साथ बाहर छोड़ना, इस प्रक्रिया को बिना रुके लगभग 5 मिनट तक निरन्तर जारी रखना। यद्यपि प्रारम्भ में थकान होगी। अधिक बल का प्रयोग न करें एवं कोहनी को अधिक ऊपर उठाकर अनुलोम-विलोम न करें तो आप धीरे-धीरे 5-7 दिन में निरन्तर 5 मिनट अनुलोम-विलोम करने में समर्थ हो जायेंगे।

10 सेकण्ड में अनुलोम-विलोम प्राणायाम एक बार निष्पन्न होगा एवं 1 मिनट में लगभग 6 बार। 5 मिनट की एक आवृत्ति में अनुलोम-विलोम लगभग 30 बार तथा स्वस्थ एवं सामान्य रोगों से ग्रस्त व्यक्ति के कुल निर्धारित समय 15 मिनट में लगभग 90 बार अनुलोम-विलोम निष्पन्न होगा। कैंसर, सफेद दाग, सोराइसिस, मस्क्यूलर डिस्ट्रॉफी, एस.एल.ई., इन्फर्टिलिटी, एच.आई.वी., एड्स व किडनी अन्य असाध्य रोग से पीड़ित व्यक्ति को अनुलोम-विलोम 30 मिनट तक करना चाहिए। अभ्यास परिपक्व होने पर अनुलोम-विलोम प्राणायाम को लगातार 15 मिनट या आधा घंटा भी किया जा सकता है।

लाभ

- इस प्राणायाम से बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार दो सौ दस नाड़ियाँ परिशुद्ध हो जाती हैं। सम्पूर्ण नाड़ियों की शुद्धि होने से देह पूर्ण स्वस्थ, कान्तिमय एवं बलिष्ठ बनता है।
- सन्धिवात, आमवात, गठिया, कम्पवात, स्नायु-दुर्बलता आदि समस्त वातरोग, मूत्ररोग, धातुरोग, शुक्रक्षय, अम्लपित्त, शीतपित्त आदि समस्त पित्त रोग, सर्दी, जुकाम, पुराना नजला, साइनस, अस्थमा, खाँसी, टॉन्सिल आदि समस्त कफरोग दूर होते हैं। त्रिदोष का प्रशमन होता है।
- हृदय की धमनियों (arteries) में आये हुए अवरोध (ब्लॉकेज) खुल जाते हैं। इस प्राणायाम का नियमित अभ्यास करने से लगभग तीन-चार माह में तीस प्रतिशत से चालीस प्रतिशत तक ब्लॉकेज खुल जाते हैं। ऐसा हमने अनेक रोगियों पर प्रयोग करके अनुभव किया है।
- कॉलेस्ट्रॉल, ट्राइग्लिसराइड्स, एच.डी.एल. या एल.डी.एल. आदि की अनियमितताएँ दूर हो जाती हैं।
- नकारात्मक चिन्तन में परिवर्तन होकर सकारात्मक विचार बढ़ने लगते हैं। आनन्द, उत्साह एवं निर्भयता की प्राप्ति होने लगती है।

❖ संक्षेप में कह सकते हैं कि इस प्राणायाम से तन, मन, विचार एवं संस्कार सब परिशुद्ध होते हैं। देह के समस्त रोग नष्ट होते हैं। तथा मन परिशुद्ध होकर ओंकार के ध्यान में लीन होने लगता है।

इस प्राणायाम को 250 से 500 बार तक करने से मूलाधार-चक्र में सन्निहित कुण्डलिनी-शक्ति जो अधोमुख रहती है, वह ऊर्ध्वमुख हो जाती है, अर्थात् कुण्डलिनी-जागरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

टिप्पणी

अधिक जानकारी एवं सावधानियों के सम्बन्ध में जानने के लिए 'कुण्डलिनी जागरण के उपाय एवं सावधानियाँ' प्रकरण देखें।

षष्ठ प्रक्रिया : भ्रामरी प्राणायाम

श्वास पूरा अन्दर भरकर मध्यमा अंगुलियों से नासिका के मूल में आँख के पास से दोनों ओर से थोड़ा दबाएँ, मन को आज्ञाचक्र में केन्द्रित रखें। अंगूठों के द्वारा दोनों कानों को पूरा बन्द कर लें (देखें पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 4)। अब भ्रमर की भाँति गुंजन करते हुए नाद रूप में 'ओ३म्' का उच्चारण करते हुए श्वास को बाहर छोड़ दें। पुनः इसी प्रकार आवृत्ति करें।

भ्रामरी प्राणायाम के समय शिवसंकल्प

यह प्राणायाम अपनी चेतना ब्राह्मी चेतना, ईश्वरीय सत्ता के साथ तन्मय एवं तद्रूप करते हुए करना चाहिए। मन में यह दिव्य संकल्प या विचार होना चाहिए कि मुझपर भगवान् की करुणा, शान्ति तथा आनन्द बरस रहा है। मेरे आज्ञाचक्र में भगवान् दिव्य ज्योति के रूप में प्रकट होकर मेरे समस्त अज्ञान को दूर कर मुझे 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' से सम्पन्न बना रहे हैं। इस प्रकार शुद्ध भाव से यह प्राणायाम करने से एक दिव्य ज्योतिपुंज आज्ञाचक्र में प्रकट होता है और ध्यान स्वतः होने लगता है।

भ्रामरी प्राणायाम का समय

3 से 5 सेकण्ड में श्वास को अन्दर भरना एवं विधिपूर्वक कान, आंख आदि बन्द करके 15 से 20 सेकण्ड में श्वास बाहर छोड़ना। एक बार भ्रामरी पूरा होने पर तुरन्त पुनः 3 से 5 सेकण्ड में एक लय के साथ श्वास अन्दर भरना एवं पुनः 15 से 20 सेकण्ड में भ्रमर की ध्वनि को करते हुए विधिपूर्वक श्वास को बाहर छोड़ना। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को लगातार कम से कम 5 से 7 बार भ्रामरी प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। यह पूरी प्रक्रिया लगभग 3 मिनट

में पूरी हो जाती है। कैंसर, डिप्रेशन, पार्किंसन, माइग्रेन, हृदय रोग, नेत्र रोग एवं अन्य किसी असाध्य रोग से पीड़ित रोगी या योग की गहराइयों में उतरने के इच्छुक योगी 11 से 21 बार तक भी भ्रामरी प्राणायाम कर सकते हैं।

लाभ

मन की चंचलता दूर होती है। मानसिक तनाव, उत्तेजना, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग आदि में लाभप्रद है। ध्यान के लिए अति उपयोगी है।

सप्तम प्रक्रिया : उद्‌गीथ प्राणायाम

3 से 5 सेकेण्ड में श्वास को एक लय के साथ अन्दर भरना एवं पवित्र ओ३म् शब्द का विधिपूर्वक उच्चारण करते हुए लगभग 15 से 20 सेकेण्ड में श्वास को बाहर छोड़ना। एक बार उच्चारण पूरा होने पर पुन: श्वास को लय के साथ 3 से 5 सेकण्ड में भीतर गहरा भरना एवं पुन: 15 से 20 सेकण्ड में ओ३म् की ध्वनिपूर्वक बाहर छोड़ना। इस प्रकार लगभग 3 मिनट में लगभग 7 बार प्रत्येक व्यक्ति को उद्‌गीथ प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। असाध्य रोगों से ग्रस्त एवं ध्यान की गहराइयों में उतरने के इच्छुक साधक 5 से 10 मिनट या इससे भी अधिक समय तक उद्‌गीथ प्राणायाम कर सकते हैं। भ्रामरी एवं उद्‌गीथ दोनों ही सहज एवं सौम्य प्राणायाम हैं। अत: इनका यदि कोई साधक लम्बा अभ्यास भी करता है तो किसी प्रकार की कोई हानि होने की सम्भावना नहीं है।

अष्टम प्रक्रिया : प्रणव प्राणायाम

पूर्वनिर्दिष्ट सभी प्राणायाम करने के बाद श्वास-प्रश्वास पर अपने मन को टिकाकर प्राण के साथ उद्‌गीथ 'ओ३म्' का ध्यान करें। भगवान् ने ध्रुवों की आकृति ओंकारमयी बनाई है। यह पिण्ड (=देह) तथा समस्त ब्रह्माण्ड ओंकारमय है। 'ओंकार' कोई व्यक्ति या आकृति विशेष नहीं है, अपितु एक दिव्यशक्ति है, जो इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का संचालन कर रही है। द्रष्टा बनकर दीर्घ एवं सूक्ष्म गति से श्वास को लेते एवं छोड़ते समय श्वास की गति इतनी सूक्ष्म होनी चाहिए कि स्वयं को भी श्वास की ध्वनि की अनुभूति न हो तथा यदि नासिका के आगे रूई भी रख दें तो वह हिले नहीं। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाकर प्रयास करें कि एक मिनट में एक श्वास तथा एक प्रश्वास चले। इस प्रकार श्वास को भीतर तक देखने का भी प्रयत्न करें। प्रारम्भ में श्वास के स्पर्श की अनुभूति मात्र नासिकाग्र पर होगी। धीरे-धीरे श्वास के गहरे स्पर्श को भी अनुभव कर सकेंगे। इस प्रकार कुछ समय तक श्वास के साथ द्रष्टा, अर्थात् साक्षीभावपूर्वक ओंकार का जप करने से ध्यान

स्वतः होने लगता है। आपका मन अत्यन्त एकाग्र तथा ओंकार में तन्मय और तद्रूप हो जायेगा। प्रणव के साथ-साथ वेदों के महान् मन्त्र गायत्री का भी अर्थपूर्वक जप एवं ध्यान किया जा सकता है। इस प्रकार साधक ध्यान करते-करते सच्चिदानन्द-स्वरूप ब्रह्म के स्वरूप में तद्रूप होता हुआ समाधि के अनुपम दिव्य आनन्द को भी प्राप्त कर सकता है। सोते समय भी इस प्रकार ध्यान करते हुए सोना चाहिए। ऐसा करने से निद्रा भी योगमयी हो जाती है, दुःस्वप्न से भी छुटकारा मिलेगा तथा निद्रा शीघ्र आयेगी एवं प्रगाढ़ रहेगी।

प्रणव प्राणायाम का समय

द्रष्टा बनकर या साक्षी होकर जब एक लय के साथ श्वासों पर मन को केन्द्रित कर देते हैं तो प्राण स्वतः सूक्ष्म हो जाता है और 10 से 20 सेकण्ड में एक बार श्वास अन्दर जाता है और 10 से 20 सेकेण्ड में श्वास बाहर निकलता है। लम्बे अभ्यास से योगी का 1 मिनट में एक ही श्वास चलने लग जाता है। भस्त्रिका, कपालभाति, बाह्य, अनुलोम-विलोम, भ्रामरी एवं उद्गीथ के बाद यह विपश्यना या प्रेक्षाध्यान रूप प्रणव प्राणायाम किया जाता है। यह पूरी तरह ध्यानात्मक है। 3 से 5 मिनट प्रत्येक व्यक्ति को यह ध्यानात्मक प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। समाधि के अभ्यासी योगी साधक प्रणव के ध्यान के साथ श्वासों की इस साधना को समय की उपलब्धता के अनुसार घंटों तक भी करते हैं। इस प्रक्रिया में श्वास से किसी तरह की ध्वनि नहीं होती अर्थात् यह ध्वनिरहित साधना साधक को भीतर के गहरे मौन में ले जाती है, जहाँ साधक की इन्द्रियों का मन में, मन का प्राण में, प्राण का आत्मा में और आत्मा का विश्वात्मा अथवा परमात्मा में लय हो जाता है, इस प्रकार साधक को ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है। प्राणायाम से प्रारम्भ हुई साधना से, अर्थात् प्राणायाम की निरन्तरता से प्रत्याहार, प्रत्याहार की निरन्तरता से धारणा, धारणा की निरन्तरता व दृढ़ता से ध्यान एवं ध्यान की निरन्तरता से समाधि की सहज प्राप्ति होती है। इस प्राण साधना से धारणा, ध्यान एवं समाधि के संयोग से **'त्रयमेकत्र संयमः'** संयम प्राप्त होता है। संयम से प्रज्ञालोक, प्रज्ञालोक से सैल्फ़ हीलिंग एवं सैल्फ रियलाइज़ेशन की अनुभूति को साधक प्राप्त कर लेता है। उसके चारों ओर एक प्रखर आभामंडल तैयार हो जाता है जो एक अभेद्य सुरक्षा कवच बनकर साधक की सब व्याधियों एवं विकारों से रक्षा करता है।

रोगोपचार की दृष्टि से उपयोगी अन्य प्राणायाम

1. सूर्यभेदी या सूर्यांग प्राणायाम

ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर दाईं नासिका से पूरक करके तत्पश्चात् जालन्धर बन्ध एवं मूलबन्ध के साथ कुम्भक करें और अन्त में बाईं नासिका से रेचक करें। अन्तः-कुम्भक का समय धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए। इस प्राणायाम की आवृत्ति 3, 5 या 7 ऐसे बढ़ाकर कुछ दिनों के अभ्यास से 10 तक करें। कुम्भक के समय सूर्यमण्डल के तेज के साथ ध्यान करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में यह प्राणायाम अल्प मात्रा में करना चाहिए।

लाभ

शरीर में उष्णता तथा पित्त की वृद्धि होती है। वात और कफ से उत्पन्न होने वाले रोग, रक्त एवं त्वचा के दोष, उदर-कृमि, कोढ़, सूजाक, छूत के रोग, अजीर्ण, अपच, स्त्रीरोग आदि में लाभदायक है। कुण्डलिनी-जागरण में सहायक है। बुढ़ापा दूर रहता है। अनुलोम-विलोम के बाद थोड़ी मात्रा में इस प्राणायाम को करना चाहिए। बिना कुम्भक के सूर्यभेदी प्राणायाम करने से हृदयगति और शरीर की कार्यशीलता बढ़ती है तथा वजन कम होता है। इसके लिए इसके 27 चक्र दिन में 2 बार करना जरूरी है।

2. चन्द्रभेदी या चन्द्रांग प्राणायाम

इस प्राणायाम में बाईं नासिका से पूरक करके, अन्तः कुम्भक करें। इसे जालन्धर एवं मूलबन्ध के साथ करना उत्तम है। तत्पश्चात् दाईं नाक से रेचक करें। इसमें हमेशा चन्द्रस्वर से पूरक एवं सूर्यस्वर से रेचक करते हैं। सूर्यभेदी इससे ठीक विपरीत है। कुम्भक के समय पूर्ण चन्द्रमण्डल के प्रकाश के साथ ध्यान करें। शीतकाल में इसका अभ्यास कम करना चाहिए।

लाभ

शरीर में शीतलता आने से थकावट एवं उष्णता दूर होती है। मन की उत्तेजनाओं को शान्त करता है। पित्त के कारण होने वाली जलन में लाभदायक है।

3. कर्णरोगान्तक प्राणायाम

इस प्राणायाम में दोनों नासिकाओं से पूरक करके फिर मुँह एवं दोनों नासिकाएँ बन्द कर पूरक की हुई वायु को बाहर धक्का देते हैं, जैसे कि श्वास को कानों से बाहर निकालने का प्रयास किया जाता है। जब वायु का कानों की ओर दबाव होता है तो कानों से स्वतः ही एक ध्वनि सी होती है। यही इसकी विधि है। श्वास को 4-5 बार ऊपर की ओर धक्का देकर फिर दोनों नासिकाओं से रेचक करें। इस प्रकार 2-3 बार करना पर्याप्त होगा।

लाभ

कर्णरोगों में लाभदायक, विशेषतः बहरेपन को दूर करता है।

4. शीतली प्राणायाम

ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर हाथ घुटनों पर रखें। जिह्वा को नालीनुमा मोड़कर मुँह खुला रखते हुए मुँह से पूरक करें। जिह्वा से धीरे-धीरे श्वास लेकर फेफड़ों को पूरा भरें। कुछ क्षण रोककर मुँह को बन्द करके दोनों नासिकाओं से रेचक करें। पश्चात् जिह्वा मोड़कर मुँह से पूरक एवं नाक से रेचक करें। इस तरह 5 से 10 बार रोग या आवश्यकतानुसार कर सकते हैं। शीतकाल में इसका अभ्यास कम करें।

विशेष

कुम्भक के साथ जालन्धर बन्ध भी लगा सकते हैं। कफ प्रकृतिवालों एवं टॉन्सिल के रोगियों को शीतली और सीत्कारी प्राणायाम नहीं करना चाहिए।

लाभ

- जिह्वा, मुँह एवं गले के रोगों में लाभप्रद है। गुल्म, प्लीहा, ज्वर, अजीर्ण आदि ठीक होते हैं।
- इसकी सिद्धि से भूख-प्यास पर विजय प्राप्त होती है, ऐसा योगग्रन्थों में कहा गया है।
- उच्च रक्तचाप को कम करता है। पित्त के रोगों में लाभप्रद है। रक्तशोधन भी करता है।

5. सीत्कारी प्राणायाम

ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर जिह्वा को ऊपर तालु में लगाकर ऊपर-नीचे

की दन्त-पंक्ति को एकदम सटाकर ओष्ठों को खोलकर रखें। अब धीरे-धीरे 'सी-सी' की आवाज करते हुए मुँह से श्वास लें और फेफड़ों को पूरी तरह भर लें। जालन्धर बन्ध लगाकर जितनी देर आराम से रुक सकें, रुकें। फिर मुँह बन्द कर नाक से धीरे-धीरे रेचक करें। पुनः इसी तरह दुहरायें। रोग या आवश्यकतानुसार इस का अभ्यास कर सकते हैं।

विशेष

- बिना कुम्भक एवं जालन्धर बन्ध के भी अभ्यास कर सकते हैं।
- पूरक के समय दाँत एवं जिह्वा अपने स्थान पर स्थिर रहनी चाहिए।

लाभ

- गुण-धर्म एवं लाभ शीतली प्राणायाम की तरह हैं।
- दन्तरोग, पायरिया आदि के अतिरिक्त गले, मुँह, नाक, जिह्वा के रोग भी दूर होते हैं।
- निद्रा कम होती है और शरीर शीतल रहता है।
- उच्च रक्तचाप में 10 से 20 तक आवृत्ति करने से लाभ होता है।

6. मूर्च्छा प्राणायाम

इस प्राणायाम में दोनों नासिकाओं से पूरक करके आँखें बन्द करते हुए सिर को ऊपर उठाकर पीछे ले जाते हैं, ताकि दृष्टि आकाश की ओर रहे। फिर अन्तःकुम्भक लगाते हैं। बाद में आँखें बन्दकर सिर को पहले की अवस्था में लाकर धीरे-धीरे रेचक करते हैं। पुनः विश्राम लिये बिना पूरक, आकाश-दृष्टि, कुम्भक सब एक साथ करते हैं और पूर्व अवस्था में आ जाते हैं। इसे प्रतिदिन 5 बार करना पर्याप्त है।

लाभ

सिर-दर्द, वात-कम्प, स्नायु-दुर्बलता आदि में लाभदायक हैं। नेत्र-ज्योति बढ़ाने तथा स्मरण-शक्ति तीव्र करने में उपयोगी हैं। कुण्डलिनी जागृत करने तथा मन को अन्तर्मुखी कर ध्यान में सहयोग करता है।

7. प्लाविनी प्राणायाम

यह एक प्रकार की वायुधौति है। जैसे मुँह से जल पिया जाता है, वैसे

ही वायु को जब तक पूरा पेट वायु से न भर जाए, तब तक लगातार पीते रहें। फिर इस प्रकार डकार लेते हैं कि पी हुई सारी वायु तत्काल पेट से बाहर आ जाये। वायु पीकर दूषित वायु को मुँह से बाहर निकाला जाता है।

लाभ

उदर के समस्त रोग एवं हिस्टीरिया दूर करने में सहायक है। कृमि का नाश होता है तथा जठराग्नि तेज होती है। दूषित वायु दूर होती हैं।

8. केवली प्राणायाम

इसमें केवल पूरक-रेचक करते हैं। कुम्भक नहीं किया जाता। पूरक के साथ 'ओ३म्' शब्द का तथा रेचक के साथ 'ओ३म्' का मानसिक उच्चारण करते हैं। इस तरह, श्वसन-प्रश्वसन के साथ 'ओ३म्' का उद्गीथ के रूप में मानसिक 'अजपा-जप' निरन्तर होता रहता है।

लाभ

एकाग्रता शीघ्र प्राप्त होती है तथा अजपा-जप सिद्ध होता है।

9. नाडी-शोधन प्राणायाम

प्रारम्भ में नाडी-शोधन प्राणायाम के लिए अनुलोम-विलोम की भाँति दाईं नासिका को बन्द करके बाईं नासिका से श्वास को अति शनैः-शनैः अन्दर भरना चाहिए। पूरा श्वास अन्दर भरने पर प्राण को यथाशक्ति अन्दर ही रोककर मूलबन्ध एवं जालन्धर बन्ध लगाना चाहिए। फिर जालन्धर बन्ध हटाकर श्वास को अत्यन्त धीमी गति से दाईं नासिका से बाहर छोड़ना चाहिए। पूरा श्वास बाहर होने पर दाएँ स्वर से श्वास को धीरे-धीरे अन्दर भरकर अन्तःकुम्भक करें। यथाशक्ति अन्दर ही प्राण को रोककर फिर बाएँ स्वर से धीरे-धीरे बाहर निकाल दें। यह एक चक्र या नाडी-शोधन प्राणायाम का एक अभ्यास पूर्ण हुआ। इस प्रक्रिया को नासिकाओं पर बिना हाथ लगाये मानसिक एकाग्रता से किया जाये तो अधिक लाभप्रद है; क्योंकि इससे मन की भी पूरी एकाग्रता प्राण पर केन्द्रित रहती है तथा मन अत्यन्त स्थिरता को प्राप्त करता है। श्वास को लेते तथा छोड़ते समय प्राण की कोई ध्वनि नहीं होनी चाहिए। इस प्राणायाम को एक से लेकर कम से कम तीन बार तक अवश्य करना चाहिए, अधिक जितनी इच्छा हो कर सकते हैं। नाडी-शोधन प्राणायाम में पूरक, अन्तःकुम्भक एवं रेचक का अनुपात प्रारम्भ में यथाशक्ति 1:2:2 का रखना चाहिए, अर्थात् जैसे कि 10 सेकण्ड में पूरक करें

तो 20 सेकण्ड तक अन्तःकुम्भक करना चाहिए तथा 20 सेकण्ड में ही धीरे-धीरे रेचक करना चाहिए। बाद में इसका अनुपात 1:4:2 तक रखें। इतना होने पर इसके साथ बाह्यकुम्भक भी जोड़ सकते हैं, अर्थात् 1:4:2:2 के अनुपात में क्रमशः पूरक, अन्तःकुम्भक, रेचक एवं बाह्यकुम्भक करना चाहिए।

इस प्राणायाम को अत्यधिक धीमी गति से करना चाहिए। संख्या के चक्कर में न पड़कर यथाशक्ति सहजता से इस प्राणायाम को करते हुए प्राण की गति जितनी दीर्घ और सूक्ष्म होगी, उतना ही अधिक लाभ होगा। यथाशक्ति श्वास लेना, छोड़ना एवं रोककर रखना ही इस प्राणायाम का वास्तविक अनुपात है। ऐसा करते हुए बीच में विश्राम की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। पूरक, कुम्भक एवं रेचक करते हुए ओ३म् या गायत्री मंत्र का मानसिक रूप से जप, चिन्तन और मनन भी करते रहना चाहिए।

लाभ

सभी लाभ अनुलोम-विलोम प्राणायाम के समान ही हैं। मस्क्यूलर डिस्ट्रॉफी, एम. एस., एस. एल. ई., पोलियो, नाडीतन्त्र की विकृति व ऑटोइम्यूनडिज़ीज में यह प्राणायाम विशेष लाभप्रद है। इन्द्रियों, मन एवं प्राण पर नियंत्रण प्राप्त करने में यह प्राणायाम सहयोगी है।

शरीर में सन्निहित शक्ति-केन्द्र या चक्र

मानव-शरीर में सन्निहित चक्र विविध प्रकार की अद्‌भुत शक्तियों के केन्द्र हैं। ये समस्त चक्र मेरुदण्ड के मूल से प्रारम्भ होकर उसके ऊपरी भाग तक जुड़े हैं। साधारण अवस्था में ये चक्र बिना खिले कमल के सदृश अधोमुख हुए अविकसित रहते हैं। ब्रह्मचर्य-पालन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि यौगिक विधियों द्वारा उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होते हैं, तब उनकी अलौकिक शक्तियों का विकास होता है। चित्रों द्वारा दिखलाई जानेवाली चक्रों की स्लूल आकृतियाँ उनके सूक्ष्म स्वरूप का बोध कराने के लिए केवल प्रतीकात्मक हैं। इसी प्रकार Pelvic Plexus (पेल्विक प्लेक्सस) आदि अँगरेजी नाम भी उनके वास्तविक स्थानों को नहीं बतलाते, अपितु संकेत-मात्र करते हैं।

चक्रों का संक्षिप्त वर्णन

चक्रों के सम्बन्ध में भगवान् अथर्ववेद में कहते हैं :

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥

(अथर्ववेद 10-2-31)

देवों की नगरी अयोध्या-रूपी इस देह में अष्टचक्र और नौ द्वार (दो आँखें, दो नासिका, दो कान, मुख, पायु और उपस्थ) हैं। इसी नगरी में एक देदीप्यमान हिरण्यय कोष है, जो अनन्त, अपरिमित, असीम सुख-शान्ति, आनन्द एवं दिव्य ज्योति से परिपूर्ण है। योगाभ्यासी उपासक साधक ही इस दिव्य कोष (खजाने) को प्राप्त कर सकता है। अब हम संक्षेप में चक्रों के सम्बन्ध में वर्णन करते हैं।

1. मूलाधार चक्र (Pelvic Plexus i.e. Root Plexus vis-a-vis Reproductory System)

यह चक्र गुदामूल से दो अंगुल ऊपर और उपस्थमूल से दो अंगुल नीचे है। इसके मध्य से सुषुम्णा (सरस्वती) नाडी और वाम कोण से इडा (गंगा) नाडी निकलती है। इसीलिए इसे मुक्त त्रिवेणी भी कहते हैं। मूलशक्ति, अर्थात् कुण्डलिनी-शक्ति का आधार होने से इसे मूलाधार चक्र कहते हैं। इस चक्र पर ध्यान करने से आरोग्यता, दक्षता एवं कर्म-कौशल आदि गुणों का विकास होता है। इस चक्र के जागृत होने

से पुरुष ऊर्ध्वरेता, ओजस्वी एवं तेजस्वी बनता है तथा शरीर की समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 5 प्रदर्शित कर रहा है कि इस प्रथम चक्र मूलाधार को सविता (बुद्धि के तेज) से प्रेरित 'मानस-रश्मियाँ' प्रकाशित कर रही हैं। इस स्थान में फव्वारे या टॉर्च की मन्द ज्योति के समान निकलनेवाला प्रकाश उस तन्तु में से निकल रहा है जो स्वाधिष्ठान चक्र के सामने से मूलाधार तक चला जाता है। यहाँ निबिड अन्धकार जड़ जमाये रहता है। प्राण-साधना एवं धारणा-ध्यान द्वारा इस अन्धकार को हटाकर 'मूलाधार' को प्रकाशित किया जाता है। यही प्रकाश मूलाधारगत समग्र स्थूलता तथा सूक्ष्मता का दर्शन कराता है। इसी को 'कुण्डलिनी-जागरण' भी कहा जाता है। चित्र-संख्या 5 में (1) सुषुम्णा-शिखर, (2) उदर का निम्न भाग इसी चक्र से सम्बन्धित, (3) गुलाबी रंग की छोटी आँतें, (4) पीले रंग की बड़ी आँतें, (5) बड़ी आँतों के निचले भाग में 'गुदा-मण्डल' (मलाशय एवं गुदाद्वार), (6) पुच्छास्थि (मेरुदण्ड का निचला भाग), (7) सुषुम्णा का निम्नद्वार, (8) सुषुम्णा का निचला भाग सौषुम्ण-मुख्य तन्तु, (9) समस्त मूलाधार मण्डल प्रकाशित होता दिखाई दे रहा है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र (Hypogastric Plexus vis-a-vis Excretory System)

मूलाधार चक्र के दो अंगुल ऊपर पेडू के पास इस चक्र का स्थान है। तन्त्र-ग्रन्थों में इस चक्र में ध्यान का फल सृजन, पालन और निधन में समर्थता और जिह्वा पर सरस्वती होना बताया है।

पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 6 से स्पष्ट है कि स्वाधिष्ठान चक्र पेडू में है। इस चक्र में मूत्र-संस्थान है, जिसमें (1) दाएँ-बाएँ गुर्दे, (2) मूत्राशय (3) मूत्रेन्द्रिय का पिछला भाग, (4) गुर्दों से निकली 'मूत्रवहा' नलिकाएँ है, जिसमें हरे-पत्र (5) 'शुक्रकोश' है, 'शुक्रवाहिनी नलिकाएँ' दाएँ-बाएँ हैं, शुक्र बनाने वाले अंग, (6) 'अण्डकोश' है, (7) प्रॉस्टेट ग्रन्थियाँ हैं, शुक्रवहा तथा मूत्रवाहिनी नलिकाएँ जाती हैं, शुक्र तथा मूत्र-निकासी पथ (8) शिश्न है। इस चक्र के साक्षात्कार से 'मूत्र-संस्थान' एवं 'शुक्र-संस्थान' का तथा इनके पारस्परिक सम्बन्ध का भी ज्ञान हो जाता है।

3. मणिपूर चक्र (Epigastric Plexus or Solar Plexus vis-a-vis Digestive System)

इसका स्थान नाभिमूल है। यकृत् एवं आँत इत्यादि सम्पूर्ण पाचन-तन्त्र एवं

अग्न्याशय आदि को यही चक्र शक्ति प्रदान करता है। योगदर्शन में **'नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्'** (3.22) सूत्र द्वारा नाभिचक्र में ध्यान करने पर शरीरव्यूहज्ञान, अर्थात् शरीर के अवयवों के सन्निवेश का ज्ञान होना फल बतलाया है। इस चक्र के जागृत होने पर मधुमेह, कब्ज़, अपच, गैस आदि सभी पाचन की विकृतियाँ भी दूर हो जाती हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 7 मणिपूर चक्र की स्थिति का प्रकाशक है। यह नाभि के पीछे है। इस चक्र में (1) आमाशय, (2) यकृत्, (3) प्लीहा, (4) पैन्क्रियाज़ एवं (5) पक्वाशय सम्मिलित हैं।

4. हृदय चक्र या निम्न मनश्चक्र (Lower Mind Plexus vis-a-vis Skeleton System)

यह चक्र हृदय के पास विद्यमान है। तन्त्र-ग्रन्थों में वाक्पतित्व, कवित्व-शक्ति का लाभ, जितेन्द्रियता आदि इस पर ध्यान करने के लाभ बताये गये हैं। 'शिवसारतन्त्र' में कहा है कि इसी स्थान में उत्पन्न होनेवाली अनाहत ध्वनि (अनहद नाद) ही सदाशिव (कल्याण- कारक) उद्गीथ रूप ओंकार है। स्त्रियों एवं श्रद्धाप्रधान चित्तवाले साधकों के लिए यह चक्र धारणा एवं ध्यान के लिए उपयुक्त स्थान है। इस चक्र पर ध्यान करनेवाले को कभी हृदयरोग नहीं हो सकता। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 8 देखें।

5. अनाहत चक्र (Cardiac Plexus vis-a-vis Circulatory System)

यह चक्र दोनों स्तनों के मध्य विद्यमान है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान एवं मणिपूर चक्रो के जागृत व स्वस्थ होने से यह स्वत: जागृत हो जाता है। इसके जागृत होने के परिणामस्वरूप हड्डियां एवं मांसपेशियां स्वस्थ व सुदृढ़ होने लगती हैं। इस चक्र पर ध्यान करने से प्रेम, करुणा, सेवा एवं सहानुभूति आदि दिव्य गुणों का विकास होता है। महर्षि व्यास भी हृदयचक्र में ध्यान के लिए कहते हैं। यह हृदय का स्थूल भाग नहीं, अपितु भावनात्मक भाग है, जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के चित्त या मानस से है। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 9 अनाहत चक्र का बड़ा रूप है। इसमें हृदय-पुण्डरीक के मध्यवर्ती मण्डलों को स्पष्ट किया गया है।

6. विशुद्धि चक्र (Carotid Plexus vis-a-vis Respiratory System)

इसका स्थान कण्ठ है। इस चक्र पर ध्यान करने एवं इसके जागृत होने पर

व्यक्ति कवि, महाज्ञानी, निरोग, शोकहीन और दीर्घजीवी हो जाता है। थायरॉयड ग्रन्थि एवं फेफड़ों के रोग भी इस चक्र के जागृत होने पर नहीं होते। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 10 में विशुद्धि चक्र का वर्णन है, जिसके 'क' भाग में प्रदर्शित संख्याओं से श्वास-नलिका (1) दोनों फुफ्फुसों के आन्तरिक भाग (4) का सम्बन्ध है।

7. आज्ञा चक्र (Medullary Plexus vis-a-vis Nervous System)

यह चक्र दोनो भ्रुवों के मध्य भ्रुकुटी के भीतर है। कपालभाति, अनुलोम-विलोम एवं नाडी-शोधन आदि प्राणायामों के द्वारा प्राण तथा मन के शांत एवं स्थिर हो जाने पर ऑटोनोमिक एवं वालन्टरी नर्वस सिस्टम शान्त, स्वस्थ एवं संतुलित हो जाता है। सम्पूर्ण नाडीतंत्र आज्ञा चक्र से ही सम्बद्ध है। आज्ञा चक्र के जागृत होने पर नाडी संस्थान पूर्णरूपेण स्वस्थ एवं सशक्त हो जाता है। मूलाधार चक्र से इडा, पिंगला तथा सुषुम्णा पृथक्-पृथक् ऊर्ध्व प्रवाहित होकर इस स्थान पर संगम को प्राप्त करती हैं। इसलिए आज्ञाचक्र-स्थान को त्रिवेणी भी कहते हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 10 के 'ख' भाग में दो गोलियों सा 'आज्ञा चक्र' का स्थान है, ललाट में भरा ऊर्ध्वगामी प्रकाश 'सुषुम्णा' का है।

इडा भागीरथी गंगा पिंगला यमुना नदी।
तयोर्मध्यगता नाडी सुषुम्णाख्या सरस्वती॥
त्रिवेणी-संगमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

(ज्ञानसंकलिनीतन्त्र)

इडा को गंगा, पिंगला को यमुना तथा दोनों के मध्य जानेवाली नाडी सुषुम्णा को सरस्वती कहते हैं। इस त्रिवेणी का जहाँ संगम है, उसे तीर्थराज कहते हैं। इसमें स्नान करके साधक समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। यह त्रिवेणी-संगम बाहर नहीं, अपितु हमारे भीतर ही है। 'बाहर की त्रिवेणी में स्नान करने से कोई भी व्यक्ति पापमुक्त हो जाता है' यह भ्रान्ति, मिथ्याज्ञान है। क्योंकि यदि ऐसा होने लगे, तो किसी भी व्यक्ति को, ब्राह्मण, गुरु या भाई आदि की हत्या करके भी त्रिवेणी संगम मे स्नान करने से पापमुक्त हो जाना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। पाप का अर्थ है 'अपराध', जिससे दूसरों का अहित होता हैं। अतः पाप का फल तो भोगना ही पड़ेगा। पाप करके भी यदि आप प्रायश्चित्त-रूप पुण्यकर्म करते हैं, तो भी पाप का फल दुःख-रूप तथा पुण्य का फल सुख के रूप में अलग

अलग भोग-रूप में प्राप्त होगा। इसलिए शास्त्रों में कहा है कि- **अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।** हाँ, यदि श्रद्धापूर्वक कोई व्यक्ति गंगा या त्रिवेणी में स्नान करे और स्नान करके संकल्प करे कि मुझे जीवन में कभी पाप-कर्म नहीं करना तो वह अपनी इसी पवित्र प्रतिज्ञा एवं संकल्प से भविष्य में पाप से बच सकता है। परन्तु, जो अवतक किया हुआ पाप है, उससे तो फिर भी नहीं बच सकता। यह तो हुई बाह्य त्रिवेणी की बात, परन्तु यदि कोई प्राणायाम एवं ध्यान द्वारा आज्ञा चक्र में सन्निहित त्रिवेणी-संगम में मन को टिकाकर भगवान् की भक्ति में, ज्ञान की गंगा में नहाता है, वह पाप की बात सोच भी नहीं सकता, फिर पाप करना तो बहुत दूर की बात है। इसलिए यदि वास्तव में हम पापों से मुक्ति चाहते हैं, तो प्रतिदिन आज्ञा चक्र में मन का निग्रह करके ओंकार के नाम का जप करते हुए योगाभ्यास करना चाहिए।

8. सहस्रार-चक्र (Endocrine System)

यह चक्र तालु के ऊपर मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर सब दिव्य शक्तियों का केन्द्र है। इस चक्र पर प्राण तथा मन के निग्रह से प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति-रूप वृत्तियों का निरोध होने पर असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति हो जाती है। पिच्युटरी (पीयूष ग्रन्थि) एवं पीनियल सहित सम्पूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का सम्बन्ध सहस्रार चक्र से है। सहस्रार चक्र के जागृत होने पर पूरा इन्डोक्राइन सिस्टम संतुलित हो जाता है।

विद्वान् योगाभ्यासी साधकों का मानना है कि उपनिषदों में जो अंगुष्ठमात्र हृदय-पुरुष का वर्णन है, वह यह ब्रह्मरन्ध्र ही है, जिसके ऊपर सहस्रार-चक्र है (क्योंकि यही अंगुष्ठ-मात्र आकारवाला है)। यहीं चित्त का स्थान है, जिसमें आत्मा के ज्ञान का प्रकाश या प्रतिबिम्ब पड़ रहा है।

शरीर में जीवात्मा कहाँ रहता है? यह एक जटिल प्रश्न है कि आत्मा के ज्ञान का प्रकाश चित्त पर पड़ता है। चित्त ही मानो सूक्ष्म-शरीर है। इस सूक्ष्म-शरीर के साथ सम्बद्ध होने पर ही आत्मा की संज्ञा जीवात्मा होती है। सूक्ष्म-शरीर स्थूल-शरीर में व्याप्त है। इस प्रकार जीवात्मा पूरे देह में व्यापक है। फिर भी कार्यभेद से उसके कई स्थान बतलाये जा सकते हैं।

सामान्यतया सुषुप्ति-अवस्था में जीवात्मा हृदय-देश में रहता है क्योंकि हृदय शरीर का मुख्य केन्द्र हैं। यहीं से सम्पूर्ण शरीर में नाडियाँ जा रही हैं। शरीर के आन्तरिक कार्य यहीं बन्द हो जाते हैं। इसलिए सुषुप्ति-अवस्था में जीवात्मा का स्थान हृदय कहा जा सकता है। जैसा कि उपनिषद् में भी कहा है :

यत्रैष एतत् सुप्तोऽभूद् य एष विज्ञानमयः पुरुषस्तदेषां प्राणानां विज्ञानेन विज्ञानमादाय य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेते।

(बृह० : 2.1.96)

जब यह पुरुष (=आत्मा), जो कि विज्ञानमय है, गहरा सोया हुआ होता है, तब वह इन इन्द्रियों के विज्ञान के द्वारा, विज्ञान को लेकर, जो यह हृदय के अन्दर आकाश है, वहाँ आराम करता है।

स्वप्नावस्था में जीव का स्थान कण्ठ बतलाया गया है क्योंकि जागृत अवस्था में जो पदार्थ देखे, सुने या भोगे जाते हैं, उनके संस्कार का आकार बाल के हजारवें हिस्से जितना है। इसलिए अनुभूत पदार्थों का संस्कार-रूप में सूक्ष्म ज्ञान स्वप्न-अवस्था में कण्ठ में होता है। जागृत अवस्था में जीवात्मा बाह्य इन्द्रियों के द्वारा बाहर के विषयों को देखता है। बाह्य इन्द्रियों में नेत्र प्रधान है, इसलिए जागृत अवस्था में जीवात्मा की स्थिति नेत्र में बतलाई गई है।

य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यत एष आत्मेति।

(छान्दो. 1.2.6.)

यह जो आँख में पुरुष दिखाई देता है, वह आत्मा है। सम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा का स्थान आज्ञा चक्र कहा जा सकता है (क्योंकि यही दिव्य-दृष्टि का स्थान है)। इसी को दिव्यनेत्र या शिवनेत्र भी कहते हैं। असम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा का स्थान ब्रह्मरन्ध्र है, इसी स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर असम्प्रज्ञात समाधि, अर्थात् सर्ववृत्तिनिरोध होता है। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 10 के 'ख' भाग में (1) सुषुम्णा-शीर्ष है, (2) लघु-मस्तिष्क, (3) पंचतन्मात्र से घिरा, मन+बुद्धि+दस इन्द्रियों का सम्पुट 'विज्ञानमय कोश' या 'सूक्ष्म-शरीर' है। (4) ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार), (5) अन्तर्मस्तिष्क का भाग है, यहाँ लाल ३ चिह्न 'अधिपति रन्ध्र' कहलाता है।

कुण्डलिनी-जागरण के उपाय

सिद्धयोग के अन्तर्गत कुण्डलिनी का जागरण शक्तिपात द्वारा किया जाता है। यदि कोई परम तपस्वी, साधनाशील सिद्धगुरु मिल जायें तो उनके प्रबलतम 'शक्तिसम्पात', अर्थात् मानसिक संकल्प से शरीर में व्याप्त 'मानस दिव्य तेज' सिमटकर ध्यान के समय ज्योति या क्रिया की धारा-सी बनकर शरीर में कार्य करने लगता है। आत्मचेतना से पूर्ण यह तेज एक चेतन के समान ही कार्यरत हो जाता है। सद्गुरु के शक्तिपात से साधक को अति श्रम नहीं करना पड़ता, उसका समय बच जाता है और साधना में सफलता भी शीघ्र प्राप्त हो जाती है। परन्तु ऐसे शक्तिपात करनेवाले सिद्धपुरुष का मिलना महत्त्वपूर्ण है। अत: वर्तमान में प्राणशक्ति द्वारा कुण्डलिनी जागृत करना महत्त्वपूर्ण है। योग में षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, मुद्रा व बन्ध आदि क्रियाओं द्वारा शरीर योगाग्नि में शुद्ध कर लिया जाता है। प्राण-साधना से नाड़ियों के शुद्ध होने पर प्रत्याहार के द्वारा इन्द्रियाँ विषयों से हटकर आत्माभिमुखी हो जाती हैं। धारणा द्वारा मन की निश्चलता के साथ साधक पंचभूत–पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश-पर विजय प्राप्त करता है। चक्र-भेदन करते हुए ध्यान द्वारा कुण्डलिनी को जागृत करने से जीवात्मा परम शिव का साक्षात्कार कर लेता है। ध्यानोपयोगी आसन में बैठकर मेरुदण्ड को सीधा रखने से सुषुम्णा से निकले नाडी गुच्छकों में 'प्राण' सरलता से गमनागमन करने लगता है। मेरुदण्ड के झुक जाने से संकुचित बने स्नायु-गुच्छक, अनावश्यक और अवरोधक कफ आदि से लिप्त होने के कारण प्राण-प्रवेश के अभाव से मलिन ही बने रहते हैं। प्राणमय-रूपी प्राण-साधना के साथ योगाभ्यासी के प्राणमय कोश पर प्रभाव पड़ता है, जिससे प्राणमय कोश के समस्त भाग उत्तेजित होकर रक्त-संचार को तीव्रतर करके, स्थान-स्थान पर एकत्रित हुए श्लेष्मा आदि मल को फुफ्फुस, त्वचा, आँतों के पथों से बाहर निष्कासित करते हैं। फलस्वरूप, शरीर में अनेक प्रकार की विचित्र क्रियाएँ होने लगती हैं एवं शरीर रोमांचित हो उठता है। योग में इसे 'प्राणोत्थान' कहते हैं, जो कुण्डलिनी-जागरण का प्रथम सोपान है। इसमें विशेष रूप से प्राण की गतिशीलता-जन्य स्पर्शानुभूतियाँ होती रहती है। अभ्यास की निरन्तरता से प्राणोत्थान के प्रकाशपूर्ण उत्तरार्ध भाग में शरीर में यत्र-तत्र कुछ प्रकाश भी दीखने लगता है एवं कुण्डलिनी-जागरण का उत्तरार्ध भाग प्रारम्भ हो जाता है। इस प्रकार प्राण-साधना से प्राणमय कोश का साक्षात्कार होता है। सभी कोश प्राण से आबद्ध हैं, अत: चक्रों में आई हुई मलिनता और इनपर छाया हुआ आवरण प्राणायाम द्वारा दूर हो जाने से शरीरगत चक्रों का, चक्रों में होनेवाली क्रियाओं का, यहाँ की शक्तियों का, जहाँ-तहाँ कार्य करनेवाले प्राणों, उपप्राणों का, इषु और

अधिपतियों का साक्षात्कार भी यथासमय हो जाता है। प्राण-साधना के निरन्तर अभ्यास से जब चक्रों में रहनेवाली शक्ति पर आधिपत्य हो जाता है, तब मूलाधार से सहस्रार तक 'प्राणशक्ति' को स्वेच्छा-पूर्वक संचालित कर लेने के सामर्थ्य से समस्त चक्रों का एवं उत्तरोत्तर अगले-अगले कोशों का साक्षात्कार कर लेना अति सरल हो जाता है। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 11 में **'सौषुम्ण-ज्योति'** दर्शाती है कि प्राणायाम के निरन्तर अभ्यास से नाडी-जाल विशुद्ध हो जाता है तो प्राण और सुषुम्णा का समस्त पथ आलोकित हो उठता है। कपालस्थ 'सूक्ष्म-शरीर' का मुख्य भाग बुद्धि (1) से प्रेरित मन (2) का प्रकाश सुषुम्णा-शीर्ष (3) के पथ से बढ़ता हुआ, समस्त 'नाड़ी-युगल' (4) को प्रकाशित करता हुआ मूलाधार-चक्र (5) से प्रवाहित होता है।

प्राण-साधना का निरन्तर पूरी लगन से अभ्यास करते हुए ज्यों-ज्यों तमस् का आवरण क्षीण हो जाता है, मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र एवं ऊपर सहस्रार चक्र तक सभी चक्र प्रकाशित होने लगते हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 12 प्राणायाम-सिद्धि पर प्रकाशित हुए चक्रों का पूर्व रूप प्रदर्शित कर रहा है। सबसे निचला 'मूलाधार चक्र' का पूर्व रूप प्रदर्शित कर रहा है। सबसे निचला 'मूलाधार-चक्र' होमकुण्ड-सम तथा इससे ऊपर 'स्वाधिष्ठान चक्र' है। इससे ऊपर नाभि में स्थित 'मणिपूर चक्र' है, नाड़ियों से घिरे इस चक्र में से उठती लहरी अनाहत शब्द की है, इससे ऊपर वक्ष (छाती) में दीपशिखा-सम प्रकाशित 'हृदय चक्र' एवं 'अनाहत चक्र' हैं, कण्ठे के समान दिख रहे कण्ठ में विशुद्धि चक्र और सबसे ऊपर कमल में सूर्य-सम प्रकाशित 'सहस्रार' है।

साधक को इन चक्रों का यह पूर्वरूप ही प्रथम दृष्टिगोचर होता है। तदनन्तर ध्यान के द्वारा अन्तःशरीर में प्रवेश कर जाने पर योगाभ्यासी को समस्त अतीन्द्रिय अन्तः-साक्षात्कार तथा अति दूरदर्शन उपलब्ध हो जाता है। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 13 (दिव्य दृष्टि का रूप) स्पष्ट करता है- चित्त (1) में जीवात्मा की ज्योति सदा चित्त एवं अहं को ज्योतिर्मय रखती है, वह पथ (4, 5) के द्वारा कपाल में स्थित विज्ञानमय कोश (4) को प्रेरित करती हुई मन (3)को प्रेरणा देती है कि वह (मन) अपनी ज्योति से अन्तर्नेत्र को दिव्यता प्रदान कर, मन (6) अपनी रश्मियों (5) के द्वारा अन्तःनेत्र (7) को दिव्य बना रहा है। योगाभ्यासी के संकल्प-बल से प्रेरित 'दिव्य दृष्टि' (8) निजरश्मि-प्रवाह (9) के द्वारा द्युलोक में सूर्य-मण्डल से भी परे तक तथा भूगर्भ में प्रविष्ट होकर (1-10) के द्वारा पाताल तक के पदार्थों का साक्षात्कार करा देती है।

ये शक्ति-केन्द्र, अर्थात् चक्र, मेरुदण्डगत सुषुम्णा नामक ज्योतिर्मयी

नाड़ी में सूक्ष्म बीज- रूप में स्थित हैं। पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 14 रहस्यमयी सुषुम्णा का है, जिसमें से पहला भाग यह दर्शा रहा है कि छोटे-बड़े 33 कशेरुओं से बने सर्पाकार मेरुदण्ड में रहनेवाली लाल रंग की 'सुषुम्णा' भी सर्पाकार बनी हुई है। 'क' सुषुम्णा-शीर्ष है, जो मस्तिष्क से जुड़ा है और 'ख' इसका पुच्छ है, जो पुच्छास्थि या गुदास्थि से मिला है। 2 सुषुम्णा की आन्तरिक स्थिति को स्पष्ट कर रहा है- 'क' : दो कशेरुओं के मध्य से निकले नाड़ी-युगल हैं, जो शरीर में जाकर फैल गये हैं। 'ख' : सुषुम्णा के बाह्य आवरण को काटकर देखने पर इन नाड़ी-युगलों की वास्तविक स्थिति को स्पष्ट कर रहा है- 'ग' : सुषुम्णा का व्यस्त कटाव है। 'घ' : प्रत्येक कशेरु-युगल के मध्य में रखी मांसपेशी की गद्दी है। 'ङ' : 'घ' से 'ङ' तक नाड़ी-युगल इसी प्रकार निकल निकलकर पूरे शरीर में फैल गये हैं। 'च' : ऊपर से नीचे तक पीठ की ओर सब कशेरुओं के मध्य में भी मांस पेशियाँ लगी हुई हैं। 3 और 5 में मोटाई में काटी गई सुषुम्णा का वह आन्तरिक भाग दर्शाया गया है जिसमें मकड़ी के जाले से भी सूक्ष्म 'ज्ञानवहा' तथा 'गतिवहा' नाड़ियों का जाल बिछा हुआ है। यह जाल चौबीसों घण्टे बिना एक सेकण्ड भी विश्राम किये कार्यरत रहता है। 5 में सुषुम्णा तथा इसके साथ ही दाएँ-बाएँ 'पिंगला' और 'इडा' नाम की दो मुख्य नाड़ियाँ भी ऊपर से चली आती हैं और गुदास्थि के समक्ष आकर मिल जाती हैं। गाँठों में पिरोई हुई इडा-पिंगला एक मालावत् दिखती हैं।

समस्त शरीर में 'ज्ञान' तथा 'क्रिया' के सम्मिश्रण से बनी जीवनी-शक्ति के प्रसार का मुख्य साधन सुषुम्णा ही है।

पृष्ठ 117 पर चक्र-दर्शन तालिका दी जाती है, ताकि चक्र-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण जानकारी समन्वित रूप से पाठकों को उपलब्ध हो सके।

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि मूलाधार चक्र के जागृत होने पर अन्य चक्रों का भी जागरण स्वतः होने लगता है और दिव्य शक्ति ऊर्ध्वगामिनी हो जाती है। यही कुण्डलिनी-जागरण है। वैज्ञानिक शब्दों में कहा जाये तो यह कुण्डलिनी वह दिव्य मानस तेज है जो शरीर भर में व्याप्त है। साधक को प्राण-साधना द्वारा चक्रों का शोधन, भेदन एवं जागरण अधोलिखित मुख्य उपायों द्वारा (किसी सत्पुरुष योग-साधक से प्रशिक्षण प्राप्त करके) करना चाहिए।

- कुण्डलिनी जागरण के इच्छुक साधक को संयम एवं विधिपूर्वक प्रतिदिन भस्त्रिका प्राणायाम 5 मिनट, कपालभाति 30 मिनट, बाह्य प्राणायाम 11-21 बार तथा अनुलोम-विलोम 30 मिनट निरन्तरता, लय, तन्मयता तथा श्रद्धा

व विश्वास के साथ करना चाहिए। प्रारम्भ में प्राणायाम करते हुए जब थकान हो तो मध्य में थोड़ा विश्राम कर सकते हैं। प्राणायाम करते हुए प्रत्येक श्वास के साथ ओ३म् का ध्यान करने से लक्ष्य शीघ्र प्राप्त होगा। अनुलोम-विलोम के बाद भ्रामरी व उद्‌गीथ भी 5-5 मिनट दिव्य तेज का ध्यान करते हुए अवश्य करें। अन्त में प्राण के साथ मन को एकाग्र करके अन्तर्यात्रा करें। इस प्रकार प्राण के साथ ओंकार के निरन्तर ध्यान से आप योग के उच्चतम क्षितिज तक पहुँच सकेंगे। ध्यान के द्वारा पुनः पुनः किया गया ओंकार का जप साधक के अन्दर लहरें उत्पन्न करता है। गुदगुदी या हर्षदायक ये लहरें 'प्राणमय कोश' (स्नायुमण्डल) के माध्यम से 'स्वाधिष्ठान चक्र' में 'तडित् नामक' (प्राण की ताडना से उत्पन्न कम्पन) विद्युन्मय प्रकम्प प्रकट होकर नाभि में एक 'नाद' (अस्फुट शब्द) उत्पन्न कर देता है, जिससे उदर में विशेष ऊष्मा प्रतीत होती है। उदर में उत्पन्न हुई ऊष्मा संकल्प में परिणत हो जाती है। जप-ध्यान के द्वारा उत्पन्न विशेष प्रकार का आघात (कम्पन) स्नायुमण्डल के द्वारा विद्युत्-लहरियों के रूप में प्राणमय-कोश में जब प्रविष्ट होता है, तब कोई प्रवाह हमारे मस्तिष्क से चलकर स्नायुमण्डल के द्वारा नाभिगत मणिपूर चक्र को प्रभावित करता है।

ओंकार के जप (ध्यान) का तात्पर्य यही है कि 'प्राण' को निम्न स्तर से उठाकर उच्च स्तर में ले जाया जावे। 'बुद्धि एवं मन' को प्राण के क्रियामय क्षेत्र से उठाकर 'विज्ञानमय कोश' के तथा 'मन-बुद्धि' को 'आनन्दमय कोश' के स्तर पर लाकर स्थिर कर दिया जावे। इसका अर्थ है- क्रमशः देह, प्राणादि के अभ्यास का अभाव करते हुए 'प्राणमय', 'मनोमय', 'विज्ञानमय' कोशों को लाँघते हुए शरीर में फैली 'आत्मचेतना' को समेटकर, 'आनन्दानुगत' तथा' अस्मितानुगत' समाधियों में स्थिर कर देना अथवा स्वयं उसमें स्थित हो जाना।

प्रणव के अलावा वेदों के सबसे महान् मन्त्र गायत्री का ध्यान पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 15 के अनुसार किया जा सकता है। साधक चित्र में प्रदर्शित संख्या 3 के अनुसार अपने मस्तिष्क में कपाल के अन्दर ध्यान की दृष्टि से देखने का प्रयास करे और 'ध्यान' करे कि मेरा मस्तिष्क इस समय 'दिव्य प्रकाश' से भर रहा है, अब परिपूर्ण हो गया है, मेरे बसन्ती- सुनहरे रंगवाले बुद्धिमण्डल में (2) टॉर्च के समान बँधी दिव्यलोक से आ रही चाँदनी जैसी एक अति धवल ज्योति प्रविष्ट हो रही है। विज्ञानमय कोश की स्वामिनी बुद्धि के परम सात्त्विक समुज्ज्वल बन जाने से इन्द्रियराज 'मन' एवं उसकी अधीनस्थ 'इन्द्रियाँ' स्वतः निर्मल-शुद्ध-पवित्र बनती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में दिन-रात मस्तिष्क और हृदय में आनन्द एवं

परमशान्त अपार ज्योति का पारावार हिलोरें लेता रहता है।

ओंकार-जप या गायत्री-जप के अलावा साधक चाहे तो पुस्तक के प्रारम्भ में चित्र सं० 16 के अनुसार 'दिव्य आलोक' का ध्यान कर सकता है। महातेजस्वी सहस्त्राक्ष भगवान् (1) मुझे 'ब्रह्मतेज' प्रदान कर रहे हैं और ब्रह्मतेज हृदय में सूर्य (2) के समान देदीप्यमान हो रहा है और विशुद्ध सौम्य ज्योति के रूप में वह ईश मेरे समक्ष है, मेरी आत्मा (3) में प्रकट है। यह दिव्यतम ज्योति मेरे जीवन-पथ को आलोकित करती हुई जीवन-पर्यन्त मेरे समक्ष, मेरे साथ बनी रहे, यही कामना होनी चाहिए।

चक्रदर्शन-तालिका

चक्रों के नाम	स्थूल स्वरूप	स्थान	तत्त्व	बीज	मुख्य वायु	गौण वायु	कोश	लोक	चक्रों की शिथिलता या जाग्रत न होने से उत्पन्न होने वाली व्याधियाँ
मूलाधार	Pelvic Plexus	जननेन्द्रिय एवं गुदा के बीच करीब १'' अन्दर	पृथ्वी	लं	अपान	कूर्म	अन्नमय	भूः	इनफर्टिलिटी, धातुरोग, यौनांगों के विकार
स्वाधिष्ठान	Hypogastric Plexus	मूलाधार चक्र के ऊपर १''–१·५''(पेडू के पास)	जल	वं	व्यान	धनंजय	प्राणमय	भुवः	मूत्ररोग, वृक्कदोष, पथरी आदि।
मणिपूर	Epigastric or Solar Plexus	नाभि के पास	अग्नि	रं	समान	कृकल	मनोमय	स्वः	पाचनतन्त्र की समस्त विकृतियां, मधुमेह, बवासीर आदि
हृदयचक्र या मनश्चक्र	Lower Mind Plexus	दोनों स्तनों के मध्य	हड्डियों एवं मांसपेशियों के रोग						
अनाहत	Cardiac Plexus	हृदय	वायु	यं	प्राण	नाग	विज्ञानमय	महः	हृदयरोग, उच्चरक्तचाप आदि
विशुद्धि	Carotid Plexus	कण्ठ	आकाश	हं	उदान	देवदत्त	आनन्दमय	जनः	अस्थमा व फुफ्फुसविकार आदि
आज्ञाचक्र	Medullary Plexus	भ्रूमध्य (कपाल के जरा पीछे)	मनस्	ॐ				तपः	मिर्गी, मूर्छा, नाड़ीतंत्र के विकार, पक्षाघात आदि
सहस्रार	Cerebral Gland	कपाल (तालु के ऊपर मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर)	महत्तत्त्व					सत्यम्	हार्मोन्स का असंतुलन व मेटाबोलिक सिन्ड्रोम आदि

ध्यान के लिए कुछ दिशा-निर्देश

- ध्यान करते समय ध्यान को ही सर्वोपरि महत्त्व दें। ध्यान के समय किसी भी अन्य विचार को चाहे वह कितना ही शुभ क्यों न हो, महत्त्व न दें। दान, सेवा एवं परोपकार करना, विद्याध्ययन, गुरुसेवा एवं गोसेवा आदि पवित्र कार्य हैं, परन्तु इनका भी ध्यान के समय ध्यान या चिन्तन न करें। ध्यान के समय चिन्तन, मनन, निदिध्यासन एवं साक्षात्कार का एकमात्र लक्ष्य ब्रह्म होना चाहिए।
- ध्यान के समय मन एवं इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनायें तथा ध्यान से पहले प्रतिदिन मन में यह चिन्तन भी अवश्य करें कि मैं प्रकृति, धन, ऐश्वर्य, भूमि, भवन, पुत्र, पौत्र, भार्या आदि रूप नहीं हूँ। ये सब व्यक्त-अव्यक्त सत्त्व मेरे स्वरूप नहीं हैं। मैं समस्त जड और चेतन बाह्य पदार्थों के बन्धन से पृथक् हूँ। यह शरीर भी मेरा स्वरूप नहीं है। मैं शरीर, इन्द्रियों तथा इन्द्रियों के विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध आदि से रहित हूँ। मैं मन तथा मन के विषय काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अभिनिवेश-रूप पंचक्लेश से भी रहित हूँ। मैं आनन्दमय, ज्योतिर्मय, शुद्धसत्त्व हूँ। मैं अमृतपुत्र हूँ। उस आनन्द सिन्धु सच्चिदानन्द, सर्वशक्तिमान् भगवान् के साथ ऐसे ही सम्बद्ध हूँ जैसे बूँद समुद्र से आकाश की ओर उठती है, फिर भूमि पर गिरकर नदियों के प्रवाह से होकर पुनः सागर में ही समाहित हो जाती है, सागर को छोड़कर बूँद रह नहीं सकती है। मैं भी उस आनन्द के सिन्धु परमेश्वर में बूँद से समुद्र रूप होना चाहता हूँ। उसी विधाता, पिता, परमेश्वर ने हमें जीवन, प्राण, जन्म, आयु, शरीर, बुद्धि, शरीर के साधन, घर, परिवार, माता, पिता आदि सब कुछ प्रदान किया है। वही प्रभु मुझे सतत आनन्द दे रहा है। प्रभु की शान्ति एवं परमसुख मुझपर सब ओर से बरस रहा है। एक पल भी वह आनन्दमयी माँ एवं परम रक्षक पिता मुझे अपने से दूर नहीं करता। मैं सदा प्रभु में हूँ और प्रभु सदा मुझमें हैं, यह तादात्म्यभाव, तद्रूपता एवं तदाकारभाव ही हमें परम आनन्द प्रदान करेगा। भगवान् अपने आनन्द की अजस्त्र वृष्टि सदा कर रहे हैं। यदि हम फिर भी उस आनन्द को अनुभव न करें तो इसमें हमारा ही दोष है।
- साधक को सदा विवेक और वैराग्य के भाव में रहना चाहिए। स्वयं को द्रष्टा, साक्षी के रूप में अवस्थित रखकर अनासक्त भाव से समस्त शुभ

कार्यों को भगवान् की सेवा मानकर करना चाहिए। कर्त्तव्य का अहंकार एवं फल की अपेक्षा से रहित कर्म भगवान् का क्रियात्मक ध्यान है।

- बाह्यसुख की प्राप्ति का विचार एवं सुख के समस्त साधन सब दुःख-रूप हैं। संसार में जब तक सुखबुद्धि बनी रहेगी, तब तक भगवत्समर्पण, ईश्वर-प्रणिधान के ध्यान एवं समाधि तक पहुँचना असम्भव है।
- इस प्रकार प्रत्येक मुमुक्षु को प्रतिदिन कम से कम एक घण्टा जप, ध्यान एवं उपासना अवश्य करनी चाहिए। ऐसा करने पर इसी जन्म में सम्पूर्ण दुःखों की समाप्ति और परमपिता परमेश्वर की अनुभूति हो सकती है। यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि जीवन का मुख्य लक्ष्य आत्मसाक्षात्कार तथा प्रभु-प्राप्ति है, शेष सब कार्य एवं लक्ष्य गौण हैं। यदि हमने इस जीवन में अभी से ईश्वर-साक्षात्कार के मार्ग पर बढ़ना प्रारम्भ नहीं किया, तो उपनिषद् के ऋषि कहते हैं :

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

(केनोपनिषद् : २.५)

इस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि जो मनुष्य अभी से धर्मविचार में रत होकर परमात्मा को जानने का यत्न करता है, वही सफल होता है। इसके विपरीत जो मनुष्य जीवन को केवल संसारी कार्यों में लगाये रखता है, वह अपनी महती हानि कर रहा है।

इस पूरी प्रक्रिया में कुछ बहुत ही आवश्यक नियम एवं सावधानियाँ भी हैं, जिनका पालन प्रत्येक साधक को करना नितान्त आवश्यक है।

विशेष नियम व सावधानियाँ

- ब्रह्मचर्य का पालन अति आवश्यक है। गृहस्थ व्यक्ति भी साधना की इस सहज प्रक्रिया के द्वारा परम आनन्द को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए उसको भी पूर्ण आनन्द की प्राप्ति के लिए क्षणिक विषय-सुख को छोड़ना होगा। अन्यथा पूर्ण उन्नति सम्भव नहीं हो सकेगी।
- आहार की शुचिता एवं सात्त्विकता पर भी अवश्य ध्यान दें। युक्त-आहार, युक्त-निद्रा एवं मर्यादित जीवन ध्यान एवं उपासना के लिए नितान्त अनिवार्य है।
- यम एवं नियमों के पालन के बिना कोई भी व्यक्ति योगी नहीं हो सकता।

इसलिए कुण्डलिनी-जागरण, चक्रों का पूर्ण शोधन एवं भेदन तथा समाधि की स्थिति को पाने के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह, इन पाँच यमों तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर-प्रणिधान, इन पाँच नियमों का पालन प्रत्येक साधक को पूर्ण यत्न से करना चाहिए। आप भयभीत न हों कि यम, नियमों का तो मैं पालन नहीं कर पाऊँगा, फिर मैं पूर्ण योगी तो नहीं बन सकूँगा। ऐसा नहीं है। बस, आप पूर्वनिर्दिष्ट विधि से यौगिक प्रक्रिया करते जायें, आप का जीवन योगमय होता जायेगा। अहिंसा और सत्य आदि यम, नियमों में आपकी आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास इतना दृढ़ हो जायेगा कि आपको असत्य आदि बोलने की इच्छा ही नहीं होगी। किसी के प्रति हिंसा का भाव ही मन में जागृत नहीं होगा। इसलिए, योग को सहज कहा जाता है; क्योंकि योग हमारा स्वधर्म है।

- एक बार कुण्डलिनी जागृत हो जाने पर यह नहीं मानना चाहिए कि सर्वदा ऐसा बिना प्रयत्न एवं अभ्यास के होता रहेगा। इसके लिए मन तथा शरीर की स्वस्थ अवस्था, निर्मलता, शुचिता, आहार एवं विचारों की पवित्रता और वैराग्य का निरन्तर बना रहना आवश्यक है। इसके अभाव में ध्यान का अभ्यास छूट सकता है।

- साधकों को इस मार्ग में आडम्बर और प्रदर्शन से बचते हुए शान्त, सरल, सहज एवं निरभिमानी, मितभाषी होकर रहना चाहिए। प्रशंसा, यश, कीर्ति आदि की कामना कदापि नहीं करनी चाहिए।

कुण्डलिनी-जागरण के लक्षण एवं लाभ

कुण्डलिनी-जागरण के आत्मिक लाभ की अभिव्यक्ति शब्दों में तो नहीं की जा सकती। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह एक पूर्ण आनन्द की स्थिति होती है। इस स्थिति को प्राप्त करने के बाद कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। मन में पूर्ण सन्तोष, पूर्ण शान्ति एवं परमसुख होता है। ऐसे साधक के पास बैठने से दूसरे व्यक्ति को भी शान्ति की अनुभूति होती है। ऐसे योगी पुरुष के पास बैठने से दूसरे विकारी पुरुष के भी विकार शान्त होने लगते हैं तथा योग एवं भगवान् के प्रति श्रद्धाभाव बढ़ते हैं। इसके अतिरिक्त, जिसकी कुण्डलिनी जागृत हो जाती है, शरीर पर भी लावण्य आने लगता है। मुख पर प्रसन्नता और समता का भाव होता है। उसकी दृष्टि में समता, करुणा तथा दिव्य भाव होते हैं। विचारों में महानता तथा पूर्ण सात्त्विकता होती है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि उसके जीवन का प्रत्येक पहलू पूर्ण पवित्र, उदात्त और महानता को छूता हुआ होता है।

इस पूरी प्रक्रिया के जहाँ आध्यात्मिक लाभ हैं, वहीं एक लाभ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण यह भी है कि ऐसी यौगिक प्रक्रिया करनेवाले व्यक्ति को जीवन में कोई रोग नहीं हो सकता है तथा कैंसर, हृदयरोग, मधुमेह, मोटापा, पेट के समस्त रोग, वात, पित्त एवं कफ की सभी विषमताएँ स्वत: समाप्त हो जाती हैं। व्यक्ति पूर्ण निरोग हो जाता है। आज के स्वार्थी व्यक्ति के लिए क्या यह कम उपलब्धि है कि बिना किसी दवा के सभी रोग मिटाये जा सकते हैं और जिन्दगी भर निरोग, स्वस्थ, मनस्वी और तपस्वी बन सकता है।

सामान्यत: एक व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियों का मात्र समभाग 5% ही उपयोग कर पाता है। कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने से योगी की समस्त आन्तरिक शक्तियाँ एवं अन्त:प्रज्ञा जागृत हो जाती है और वह मानव से महामानव, पुरुष से युगपुरुष या महापुरुष बन जाता है। इससे सिद्ध योगी में ईश्वरीय शक्तियों का व्यापकता के साथ अवतरण होने लगता है। विश्वशान्ति एवं जगत्कल्याण हेतु परमात्मा ऐसे योगी का चुनाव कर लेता है। ऐसा योगी परमात्मा का प्रतिरूप होकर जीता है, वह करोड़ों लोगों की आस्था का केन्द्र बन जाता है। वह धर्म, अध्यात्म, संस्कृति एवं ईश्वरीय सत्ता का जीवन्त स्वरूप होता है।

श्लोक/मंत्र सूची	पृष्ठ	श्लोक/मंत्र सूची	पृष्ठ
अभिवृष्टा ओषधय:	4	गीताध्ययनशीलस्य प्राणायामपरस्य	64
अपानति प्राणति	5	गुणानुरागादिव सख्यमीयिवान्	75
अन्तर्गर्भश्चरति	6	चले वाते चलं	63
अष्टाचक्रं वर्तत	7	जाठर: प्राणिनामग्नि: काय	17
अन्नं वै सोम:	19	जातस्य हि ध्रुवो	72
अमृतमु वै प्राण:	23	तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वास-	
अर्वाग्बिलश्चमस	26	योर्गतिविच्छेद:	15
अरा इव रथनाभौ	26	तत: क्षीयते प्रकाशावरणम्	15, 63, 70
अह्ना रात्र्या च	80	तदग्निर्वै प्राण:	17
अथवा मुच्यते पापात्	80	ते वा एते	17
अष्टाचक्रा नवद्वारा	105	तदाहु: कोऽस्वप्तुमर्हति,	24
आथर्वणीरांगिरसी	5	तद्वा अथर्वण: शिरो	25
आ वात वाहि	18, 60	तौ वा एतौ द्वौ	28
आसनेन रुजं हन्ति	63	तां योगमिति मन्यन्ते	71
आवर्त्तयेत् सदा	78	त्रिवेणी-संगमो यत्र	108
केशाग्रान्नखाग्राच्च	78	देवानामसि वह्नितम:	26
शरीरं	23	द्वाविमौ वातौ वात	74
स्त्वं प्राण तेजसा	26	धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं	1
इडा भागीरथी गंगा	108	धारणासु च योग्यता मनस:	15, 63
इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति	119	धीधृतिस्मृतिविभ्रष्ट: कर्म	30
एकं पादं नोत्खिदति	6	धम्यमानं यथा	78
ऊर्ध्व: सुप्तेपु जागार	7	नमस्ते प्राण क्रन्दाय	3
एतदाद्यं तप: प्रोक्तमेतद्धर्मस्य	78	नमस्ते अस्त्वायते नमो	4
एकाक्षरं परं ब्रह्म	80	नमस्ते प्राण तिष्ठत	4
ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमा-		न सोऽस्ति रोगो भुवि	34
युरवाप्नुयु:	66	न स जीयते मरुतो	72
कति देवा याज्ञवल्क्येति	16	नि वो यायाम मानुषो	74
कतम एको देव	16	निरोधाज्जायते वायुर्वायोरग्नि:	79
कायस्यान्तरग्नेश्चिकित्सा	17	निरोधाज्जायते वायुस्तस्मादग्निस्ततो	79
कर्मणा मनसा वाचा	77	प्राण एव प्रज्ञात्मा	23

श्लोक/मंत्र सूची	पृष्ठ
प्राणा वा ऋपय:	25
प्रजापतिश्चरसि गर्भे	26
प्राणो वाव संवर्ग:	28
प्रज्ञापराधो हि	30
पुरुपार्थशून्यानां गुणाना	33
प्राणो ह पिता प्राणो	61
प्राणा वाव वसव:	62
प्राणा वाव रुद्रा:	62
प्राणा वाव आदित्या:	62
प्राणापानौ मृत्योर्मा पात स्वाहा	63
प्राणायामैरेव सर्वे	63
प्राणो ब्रह्मेति	67
प्राणं देवा अनुप्राणन्ति	67
प्राणायामेन युक्तेन	67
पवनो बध्यते येन	67
प्राणायाम: परं तप:	69
प्राणायामैर्दहेद् दोषान्	69
प्र नू स मर्त: शवसा जनाँ	73
प्राणायामान् द्विज: कुर्यात्	77
प्राणायामत्रयं कृत्वा	77
प्राणायामान् धारयेत् त्रीन्	77
मनोवाग्देहसम्भवान्	78
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोऽपि	79
प्राणायामो भवेदेवं	79
प्राणायामशतं कार्य	81
प्राणाय नमो यस्य	3, 27, 76
प्राण: प्रजा अनु	4
प्राणो मृत्यु: प्राणस्तक्मा	4
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे	4
प्राणो विराट् प्राणो	5

श्लोक/मंत्र सूची	पृष्ठ
प्राणापानौ व्रीहियवावनड्वान्	5
प्राणमाहुर्मातरिश्वानं	5
प्राण मा मत्पर्यावृतो	7
पित्तं पंगु कफ:	8
पवनस्तेपु बलवान्	8
प्राणस्येदं वशे सर्व	9, 26, 62
प्राणो अमृतं तद्	16
प्राणो हि प्रजापति:	16
प्राण उ वै प्रजापति:	16
प्राणाग्नय एवैतस्मिन्	17, 18
प्राणो वाग्नि:	17
प्राणो अग्नि:	17
पुरुपो वांव यज्ञ:	17
प्राणो वै हरि:	18
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्मद्	18
'प्राणो ब्रह्म' इति ह	22
प्राणो वै सुशर्मा	23
प्राण एप स	23
प्राणो वा अर्क:	23
प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा	23
रोगा: सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ	16
रेतो वै प्राण:	19
वायुस्तन्त्रयन्त्रधर:	66
वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता	66
वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र	69
वृत्रस्य त्वा श्वसथादीपमाणा	74
विश्वे देवा अजहुर्ये	75
शरीरं हि विना वायुं	66
शृणोति कश्चिदेषाम्	74
हन्ताहं पृथिवीमिमां निदधानीह	22

श्लोक/मंत्र सूची	पृष्ठ

श्लोक/मंत्र सूची	पृष्ठ

योग एक जीवन दर्शन

योग एक जीवन दर्शन है, योग आत्मानुशासन है, योग एक जीवन पद्धति है, योग व्याधिमुक्त व समाधियुक्त जीवन की संकल्पना है। योग आत्मोपचार एवं आत्मदर्शन की श्रेष्ठ आध्यात्मिक विद्या है। योग व्यक्तित्व को वामन से विराट् बनाने की या समग्र रूप से स्वयं को रूपान्तरित व विकसित करने की आध्यात्मिक विद्या है। योग मात्र एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति नहीं अपितु योग का प्रयोग परिणामों पर आधारित एक ऐसा प्रमाण है जो व्याधि को निर्मूल करता है अत: यह एक सम्पूर्ण विधा का शरीर रोगों का ही नहीं बल्कि मानस रोगों का भी चिकित्सा शास्त्र है।

योग एलोपैथी की तरह कोई लाक्षणिक चिकित्सा नहीं अपितु रोगों के मूल कारण को निर्मूल कर हमें भीतर से स्वस्थता प्रदान करता है। योग को मात्र एक व्यायाम की तरह देखना या वर्ग विशेष की मात्र पूजापाठ की एक पद्धति की तरह देखना संकीर्णतापूर्ण, अविवेकी दृष्टिकोण है। स्वार्थ, आग्रह, अज्ञान एवं अहंकार से ऊपर उठकर योग को हमें एक सम्पूर्ण विज्ञान की तरह देखना चाहिए।

योग की पौराणिक मान्यता है कि इससे अष्टचक्र जागृत होते हैं एवं प्राणायाम के निरंतर अभ्यास से जन्म-जन्मान्तर के संचित अशुभ संस्कार व पाप परिक्षीण होते हैं।

-इसी पुस्तक से

Price : Rs 50/-

8 904049 800022
ISBN 81-7525-484-X

दिव्य प्रकाशन
पतञ्जलि योगपीठ
महर्षि दयानन्द ग्राम,
दिल्ली-हरिद्वार राजमार्ग, बहादराबाद,
हरिद्वार-249408, उत्तराखण्ड